ॐ

"कलौ तु केवला भक्तिः"

वेदोपनिषद् ।

प्रकाशक

भूमानन्द ब्रह्मचारी

भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा रेवड़ी

प्रथमावृत्ति
२००० प्रति

सं० १९२६

मूल्य ।-)

ओ३म्

प्रस्तावना

ओ३म्।

प्रस्तावना।

भारत वर्ष के सनातन धर्म का मूल श्रुति है। यह
किसी विशेष मनुष्य की बनाई हुई नहीं है अनन्त काल से
सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा से ही यह ज्ञान जिन के शुद्धान्तः
करण में सूर्य के प्रतिबिम्ब की न्याईं प्रकट होता है उन्हीं को
ऋषि देव ऋषि आदि नामों से पुकारा जाता है। जिस
पहले ही पहल इस का आभ्यन्तर अनुभव होता है उस
के ज्ञान को श्रुति कहते हैं। इस का नाम ईश्वर की वाणी
आत्मा का पहुंचाया हुआ ज्ञान कहाता है जब वह पुरुष
ी आत्मा के अनुभव का विषय वाणि और युक्ति द्वारा
ी ऐसे पुरुष को पहुंचाता है कि जिस को अभी स्वतः इस
आन्तरिक अनुभव नहीं हुआ है तो उस पहिले
का अनुभव ज्ञान जो दूसरे पुरुष को सुनने के अनन्तर
अनुभव द्वारा सिद्ध हो जाता है उस का नाम स्मृति है।
सम्पूर्ण सनातन धर्म इन्हीं दोनों प्रकार के ज्ञान और अनुभव
से बना हुआ है और इन दोनों प्रकार के ज्ञान और विद्या के वि-
चार का नाम शास्त्र है। शास्त्र का मुख्योद्देश जीव को अज्ञान
से उद्धार कर यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कराना है। उपनिषद् शब्द
का अर्थः—उप- समीपस्थं ब्रह्मात्मैकत्वं सहेतु संसार सादय-

तीति उपनिषद्" अविद्या सहित संसार की निवृत्ति करने वाला जो जीव ब्रह्म का एकत्व रूप ज्ञान है उस का नाम उपनिषद् है।

निवेदक

भूमानन्द ब्रह्मचारी

ईशोपनिषद् ।

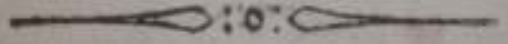

ईशावस्यं इत्युपक्रमः । सपर्यगात् इत्युपसंहारः । अनेजदेकं तदनन्तरस्य इत्यभ्यासः । नैनद्देवा आप्नुवन् इत्यपूर्वोक्तिः । को मोह् कः शोकः इति फलोक्तिः । कुर्वन्नेवेह कर्माणि इत्याविदुषः कर्म कर्णानुवादेन । असुर्या नाम ते लोकाः इति कर्म निन्द्यैक्यात्मविद्यायास्तुति । तस्मिन्नपो मातरिश्वा इति उपपत्तिः ॥

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १

ईश, धातु से कुप् प्रत्ययान्त यह रूप है उस ईश्वर से इस सम्पूर्ण को, (वस आच्छादने) व्याप्त समझना चाहिये । यह सब भगवान् का रूप है ऐसा जानना चाहिये । चतुर्दश भुवनों में यत्किंचित् कार्य कारणात्मक जगत् है वह ईश्वर रूप है ऐसी बुद्धि करनी चाहिये । एषणात्रय त्याग से भोगना चाहिये । यह सब ईश्वर ही है ऐसी बुद्धि पालनी चाहिये । भिक्षा कौपीन आच्छादनातिरिक्त किसी के धन की आकांक्षा

नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवंत्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

इस कर्माधिकार में कर्मों को आचरण करता हुआ सौ वर्ष जीने की इच्छा करै । इस प्रकार तुझ करके अधिकारी नर में अशुभ कर्म सम्बन्धित न होंगे अन्यथा अशुभ कर्म लेपा भाव में साधनान्तर नहीं है जिस प्रकार से अशुभ कर्म लोप न हो ॥ २ ॥

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥

सुष्ठु रमन्ते इति सुरा तेभ्योऽन्येऽसुराः उन के योग्य श्वशूकर आदि देह विशेष लोक हैं आवर्ण से स्वरूपाज्ञान से आच्छादित हैं उन लोकों को वे जाते हैं जो आत्म हत्यारे हैं। आत्मा अजरामर लक्षण युक्त है उस को जरा मरणादि युक्त मानने वालों का नाम आत्म हत्यारा है ॥ ३ ॥

अनेजदेकन्मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ४॥

चलन रहित, मन से वेगवत्तर इस को देवता चक्षु आदि इन्द्रियें नहीं प्राप्त होते । मन आदि से पूर्व ही सब में व्यापक है वह दौड़ता हुआ सब को उलंघन कर जाता है। उस में मातरिश्वा कर्मों के फलों को रखता है ॥ ४ ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वान्तिके ।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

वह चलता है, और नहीं चलता है, वह समीप है, वह दूर है, वह आभ्यान्तर है, वह जगत से बाहर है ॥ ५ ॥

यस्तु सर्वाणिभूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

जो सब भूतों को आत्मा में ही देखता है और सब भूतों में आत्मा को देखता है वह किसी की भी निन्दा नहीं करता है ॥ ६ ॥

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजनतः ।

तत्र को मोहः कःशोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

जिस समय में जान ने वाले के लिये सब कुछ आत्मा ही हो गया उस काल में एकत्व देखने वाले को शोक मोह नहीं रहते ॥ ७ ॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपाप-

विद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः । स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्

व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

वह सर्व व्यापक है, दीप्तो मान है लिङ्ग शरीर रहित है, शिरा वर्जित है, अविद्या मल रहित है, धर्माध र्मादि पाप शून्य है, सर्व द्रष्टा है, मन का ईषिता है, नाना रूपों कर के सब ओर होता है स्वयं ही होता है निरन्तर अना

दि काल से यथातथ्यतः पदार्थों की कल्पना किया है ॥ ८ ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः ॥ ९ ॥

जो अविद्या को प्राप्त होते हैं उपासते हैं वह इस अन्धकार में प्रवेश करते हैं ॥ ९ ॥

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये न स्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

देवतोपासन से अन्यत् फल होता है और कर्मोपासन से अन्यत् विद्या से देव लोक प्राप्ति होती है और कर्म से पितृ लोक की प्राप्ति होती है । ऐसे बुद्धि वालों के वचन हम सुनते हैं जो हमारे लिये व्याख्यान कर गये हैं ॥ १० ॥

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ११ ॥

जो विद्या और अविद्या को मिला कर जानता है वह अविद्या से मृत्यु को तर कर विद्या से अमृतत्व को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः ॥ १२ ॥

जो जगत् कारण भूत प्रकृति को उपासता है वह अन्धतम में प्रवेश करता है। प्रकृति के कार्य की उपासना करने वाला अधिक अन्धकार में प्रवेश करता है ॥ १२ ॥

अन्य देवाहुः सम्भवादन्य दाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३॥

कार्य रूप से अन्यत् फल होता है और कारण से अन्यत् फल कहते हैं ऐसा वेद वेत्ताओं से सुना है जो हमारे लिये उपदेश कर गये हैं ॥ १३ ॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥ १४॥

जो सम्भूति को और विनाश को एक साथ में उपासना है वह विनाश से मृत्यु को तर कर सम्भूति से अमृतत्व को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ १५ ॥

हे जगत् पोषक बाध रहित तेरा मुख हिरण्मय पात्र से ढका हुवा है । उस मुखविधायक चमकदार वस्तु को हम से दूर कर जिस से हम तेरा सत्य धर्म जान और देख ॥ १५ ॥

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह ।
तेजो यत्ते रूपङ्कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः
सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

हे पूषन! एक ऋषे !एक एव ऋषति गच्छति इति एक ऋषिः हे सर्व नियामक ! हे प्रजातेरपत्य ! किरणों का उपसंहार कर । जो तेरा ज्योति स्वरूप है उस को मैं साक्षात्

कार करूं जो तेरा वह रूप है सो ही मैं हूँ॥१६॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳशरीरम् ।

ओं क्रतो स्मर कृतꣳस्मर क्रतो स्मर कृतꣳस्मर॥ १७॥

मरण काल में प्राण वायु बाहर की वायु को प्राप्त होवे स्थूल देह अग्नि में भस्म रूप होवे । हे संकल्प रूप। तू ओंकार को स्मर ज्ञान और कर्म को स्मर ॥ १७ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

हे अग्ने ! हम को अच्छे मार्ग से ले चल कर्म फल भोग के लिये। हे देव ! हमारे सम्पूर्ण ज्ञान और कर्मों को जानते हुवे हम से कुटिल पाप का दूर कीजिये इस लिये हम आप को अधिक तर नमस्कार करते हैं ॥ १८ ॥

ओं शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

* केनोपनिषद् *

ओं आप्यायन्तु ममांगानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रम
थोबलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माऽहं
ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणम-
स्त्वनिराकरणं मेऽस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु
धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥

ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

मेरे कर चरणादि अङ्ग ब्रह्म ध्यान अनुकूल तया से वृद्धि को प्राप्त होवें । ब्रह्म है या नहीं ऐसा निरादर मैं नहीं करूं । ऐसे ही वह मेरा निराकरण नहीं करे । हम परस्पर प्रीति से वर्तें । ब्रह्मात्मा में निरन्तर प्रेम करें । मेरे में शमादिक होवें । उपनिषदों में जो धर्म प्रकाशित हुये हैं वह सब मेरे में वर्तें ॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

प्रथम खण्ड

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति
युक्तः । केनेषिता वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ
देवो युनक्ति ॥ १ ॥

किस करके प्रेरित हुआ मन जाता है। किस करके प्राण प्रथम प्रैति-युक्त होते हैं। किस से प्रेषित इस वाणि को बोलते हैं। चक्षु, श्रोत्र को कौन देव नियुक्त करता ॥ १ ॥

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः। चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ २ ॥

जो श्रोत्र का श्रोत्र है, मन का मन, वाणि का वाणि, प्राण का प्राण, चक्षु का चक्षु है उस को बन्धन से पृथक् जान कर धीर पुरुष इस लोक से मर कर अमर होते हैं ॥ २ ॥

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥

उस में चक्षु नहीं जा सकती, वाणि नहीं पहुँचती, न मन ही पहुंच सकता है। न हीं जानते और न हीं विशेषतः जान सकते हैं। जिस से शिष्यादि को उपदेश किया जावे। वह ज्ञात वस्तु से और ही है और अज्ञात वस्तु से ऊपर है इस प्रकार पूर्वाचार्यों के वचन हम सुनते हैं जो हमारे प्रति उस का व्याख्यान कर गये हैं ॥ ३ ॥

यद्वाचाभ्युदितं येन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ४ ॥

जो वाणि से प्रकाशित नहीं होता जिस से वाणि प्रकाशित होता है उस को ही ब्रह्म जान। जो इस वाणि से शब्दादि का सेवन करते हैं यह वह नहीं है ॥ ४ ॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥५॥

जिस को मन से नहीं मन न करता जिस से मन को माना हुवा कहते हैं। उस को ही तू ब्रह्म जान। जो इस मनो गम्य सुखादि की उपासना करते हैं यह वह नहीं है ॥ ५ ॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ६ ॥

जिस को आंख से नहीं देखता जिस से आंखें देखती हैं उस को ही ब्रह्म जान। जो इस चक्षु ग्राह्य रूप की सेवा करते हैं यह वह नहीं ॥ ६ ॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ७ ॥

जिस को श्रोत्र से नहीं सुनता जिस से यह कान सुने गये हैं उसी को ब्रह्म जान। जो इस श्रोत्र ग्राह्य शब्द का सेवन करते हैं यह ब्रह्म नहीं ॥ ७ ॥

यत्प्राणेन प्राणिति येन प्राणः प्राणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ८ ॥

जो प्राण से चेष्टा नहीं करता जिस से प्राण चेष्टा

करते हैं उस को वह जान। जो इस श्वास प्रश्वास रूप वायु की उपासना करते हैं यह वह नहीं है ॥ ८ ॥

इति प्रथमः खण्डः

अथ द्वितीयः खण्डः

यदि मन्यसे सुवेदेतिदभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्। यदस्य त्वं यदस्यदेवेष्वथनु मीमां स्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥ ९ ॥

हे शिष्य यदि जो तू इस ब्रह्म का जो स्वरुप हैं उसको अच्छे प्रकार जानता हूं ऐसा मानता है तो निश्चय करके तू थोडा ही जानता हैं। और यदि निश्चय करके जी इस ब्रह्म का स्वरुप देवताओं में व्याप्त है उस को तेरे लिये विचार करने योग्य ही मैं मानता हूं ॥ ९ ॥

न हं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च। यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥ १० ॥

मैं ब्रह्म को अच्छे प्रकार जानता हूं ऐसा नहीं मानता। बिलकुल नहीं जानता ऐसा भी नही मानता। जानता भी हूं पर नहीं जानता वा जानता हूं ऐसा नहीं मानता। जो पुरुष हम में से ऐसा जानता है वही उस को जानता है ॥ १० ॥

यस्याऽमतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ ११ ॥

जिस का कुछ मत नहीं है उस का वह जाना हुआ है। और जिस का मत है वह उस को नहीं जानता वह जानने वालों को अविज्ञात है न जानने वालों की विज्ञात है। मनसा यदवधार्यते तन्मतम् ॥ ११ ॥

प्रतिबोध विदितं मतममृतत्वं हि विन्दते। आत्मना विंदते वीर्य्यं विद्यया विंदतेऽमृतम् ॥ १२ ॥

इन्द्रियों से जो विषयों का ज्ञान होता है उसे बोध कहते हैं। और इन्द्रियों को विषयों से रोक कर आत्मा में बुद्धि की वृत्तियों को लगाने से जो ज्ञान उत्पन्न होता हैं उस प्रतिबोध कहते हैं।। उस प्रतिबोध से जाना हुवा जो आत्मा तत्व है उस से निश्चय करके मोक्ष को प्राप्त होता हैं। आत्मा से बल को प्राप्त होता है, विद्या से मोक्ष पाता है ॥ १२ ॥

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकामृता भवन्ति ॥ १३ ॥

यदि यहां पर जाना गया तो अमृत है और यदि यहां पर नहीं जाना गया तो बड़ी हानि है। धीर लोग चराचर जगत् में विचर कर इस लोक से पृथक् हो कर अमर होते हैं ॥ १३ ॥

इति द्वितीयः खण्डः

अथ तृतियः खण्डः

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त । त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥ १४ ॥

निःसन्देह परमात्मा देवताओं से जीत गया । उस ब्रह्म के जीत जाने पर देवता बढ़ने लगे वे हमारा ही यह जात है, हमारी ही यह महिमा है ऐसा मानने लगे ॥ १४ ॥

तद्धैषां विजज्ञौ, तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव । तन्न व्यजानन्त, किमिदं यक्षमिति ॥ १५ ॥

वह इन की चेष्टा को जान गया । निश्चय उन हीं में से प्रकट हुवा उन्हों ने यह प्रकाश पुंज कौन है इस प्रकार उस को नहीं जाना ॥ १५ ॥

तेऽग्निमब्रुवन्, जातवेद । एतद्विजानीहि, किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ १६ ॥

वे देवता अग्नि से बोले कि हे अग्ने ! यह यक्ष कौन है इस को जान अग्नि ने कहा बहुत अच्छा ॥ १६ ॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति । अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ १७ ॥

अग्नि उस के सामने गया उस अग्नि से उस ने

कहा कि तू कौन है। अग्नि ने कहा कि मैं अग्नि हूं, मैं जात वेदा हूं ॥ १७ ॥

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्य्यमित्यपीदं सर्वं दहेयं। यदिदं पृथिव्यामिति ॥ १८ ॥

उस तुझ में क्या पराक्रम है जो कुछ यह पृथिवी में है निःसन्देह इस सब को जला सकता हूं मुझ में यह सामर्थ्य है ॥ १८ ॥

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति। तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकदग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ १९ ॥

उस के लिये ब्रह्म ने एक तिनका धर दिया और कहा कि इसको जला दे। अग्नि सारे वेग से उस तृण के समीप पहुंचा परन्तु उस को जलाने को समर्थ न हुवा। वह उस कर्म से ही निवृत्त हुआ और देवताओं से कहने लगा कि जो यह यक्ष है इस के जानने को मैं समर्थ नहीं हुवा ॥ १९ ॥

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद्विजानीहि। किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ २० ॥

इस के अनन्तर वे सब देव वायु से बोले हे वायु! तू यह यक्ष कौन है इस को ज्ञात कर ॥ २० ॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति । वायुर्वा अहमस्मी-
त्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥ २१ ॥

वायु उस ब्रह्म के समीप गया, उस से उस ने कहा कि तू कौन है। वायु बोला कि मैं वेगशील हूं, अन्तरिक्ष गामी हूं ॥२१॥

तस्मिन्स्त्वयि किं वीर्य्यमित्यपीदꣳ सर्वमाददीयम् यदिदं पृथिव्यामिति ॥ २२ ॥

उस तुझ में क्या बल है जो कुछ यह पृथिवी में है नि-श्चय इस सब को उठा सक्ता हूं वा उड़ा सक्ता हूं ॥२२॥

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति । तदुपप्रेयाय सर्व-जवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदश-कं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ २३ ॥

उस के लिये उस ने एक तिनका धर दिया, और कहा कि इस को उठादे। वायु सारे वेग से उस तृण के समीप पहुंचा परन्तु उस को उठाने को समर्थ न हुवा वह उस कम से ही निवृत्त हुवा और अन्य देवों से कहने लगा कि जो यह यक्ष है इस के जानने को मैं समर्थ नही हुवा ॥२३॥

अथेन्द्रमब्रुवन् मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति। तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ २४ ॥

तत्पश्चात् वे देव इन्द्र से बोले हे मघवन्। तू यह यक्ष

कौन है इस को जान। इन्द्र "तथास्तु" कहकर उस के सन्मुख गया। उस इन्द्र से अन्तर ध्यान होगया ॥ २४ ॥

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमा नामुमां हैमवतीं ताꣳ होवाच किमेतद्यक्षमिति ॥२५॥

वह इन्द्र उस आकाश में बड़ी शोभा वाली प्रकाश युक्त उमा नाम्नि स्त्री के समीप आया। स्पष्ट रीति पर उस से बोला कि यह यक्ष कौन है ॥ २५ ॥

इति तृतीयः खण्डः।

अथ चतुर्थः खण्डः।

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति। ततो हैव विदांचकार ब्रह्मेति ॥२६॥

वह उमा ब्रह्म है यह प्रसिद्ध बोली। निश्चय ब्रह्म की जीत में महत्व को प्राप्त होवो। उससे ब्रह्म को जाना ॥ २६ ॥

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते। ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येनत् प्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति ॥२७॥

जो अग्नि, वायु, इन्द्र यह तीन इस ब्रह्म को अत्यन्त समीप स्पर्श करने वाले हुए निश्चय तीनों ने इस को सब से पहले ब्रह्म है ऐसा जाना। इस कारण यह तीनों देव अन्य देवों का उलंघन कर प्रशस्त हुए ॥२७॥

तस्माद्वा इन्द्रोतितरामिवान्यान्देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदांचकार ब्रह्मेति ॥ २८ ॥

जिस कारण इन्द्र ब्रह्म को अति समीप स्पर्श करने वाला हुवा उस ही ने इस को सब से पहले जाना इस कारण वह अन्य देवों को अति क्रमण कर प्रशस्त हुवा ॥२८॥

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा इतीतिन्यमीमिषदा इत्यधिदैवतम् ॥२९॥

उस का यह आदेश है । अलंकार युक्त उपदेश है। जो यह बिजली के समान कभी चमक जाता है, कभी छिप जाता है, तथा नेत्र के समान खुलता वा बन्द हो जाता है इस प्रकार देवताओं में ब्रह्म का उपाख्यान है ॥२९॥

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः ॥३०॥

अब अध्यात्म कहते हैं । जो इस ब्रह्म के प्रति मन चलता हुवा सा जान पड़ता है और इस मन से उत्थित संकल्प बारम्बार उस का स्मरण करता है ॥ ३० ॥

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥३१॥

वह ब्रह्म योगी जन सेव्य होने से तद्वन् कहलाता है वह

इसप्रकार उपासनीय है। सो जो मनुष्य इस ब्रह्म को इस प्रकार जानता है उस की सब प्राणि चाहना करते हैं ॥ ३१ ॥

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥३२॥

हे शिष्य ! तुम ने कहा था कि श्री गुरो ! ब्रह्म विद्या को कहिये सो तेरे लिये उपनिषद् कही गई। निश्चय तेरे प्रति ब्रह्म विद्या सम्बन्धिनी उपनिषद् को हम ने कह दिया ॥ ३२ ॥

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥३३॥

ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिये तप द्वन्द्व सहिष्णुता, दम, मन का निग्रह, कर्म वैदिक कर्मानुष्ठान यह तीन साधन हैं। इन हीं में चारों वेद छओं अङ्ग, इस के मूल सत्य की भी स्थिति है ॥३३॥

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥३४॥

जो पुरुष निश्चय कर उस विद्या को इसप्रकार जानता है वह चिर काल से संचित पाप वासनाओं को नष्ट कर जिस का अन्त नहीं ऐसे सब से बड़े आनन्दमय पद में प्रतिष्ठित होता है ॥३४॥

इती चतुर्थ खण्डः ।

इति केनोपोनिषद् समाप्ता ।

* कठोपनिषद् *

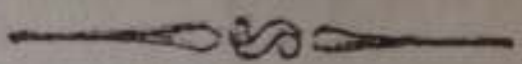

प्रथमा वल्ली

ओं सह नाववतु । सहनौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ओं उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नाचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥

सुना जाता है वाजश्रवा के पुत्र ने फल की कामना करते हुये सर्वस्व को दान किया । उस का नाचिकेता नाम वाला पुत्र था ॥ १ ॥

तꣳ ह कुमारꣳ सन्तं दक्षिणासु ।
नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥ २ ॥

बालक होने पर भी उस को दान किये हुये पदार्थों के यथा योग्य विभाग करते समय आस्तिकी बुद्धि प्रविष्ट हुई वह सोचता था ॥ २ ॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रिया ।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥३॥

जो गायें जल पी चुकी हैं तृण भक्षण कर चुकी हैं दूध जिन का दुहा जा चुका है उन को जो दान करता है वह आनन्द रहित जो लोक हैं उनको जाता है ॥ ३ ॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति,
द्वितीयं तृतीयं तꣳहोवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ॥४॥

वह पिता से बोला, हे तात ! मुझ को किस के लिये देंगे दो बार तिबारा उक्तवाक्य कहा कि मुझे किस के लिये देंगे। तब उस ने क्रोध करके कहा कि मौत के लिये तुझ को दूंगा ॥ ४ ॥

बहुनामेमि प्रथमो बहुनामेमि मध्यमः ।
किꣳस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाऽद्य करिष्यति ॥ ५ ॥

बहुत सों में मुख्य समझा जाता हूं बहुत सों में मध्यम माना जाता हूं। यम का क्या कर्तव्य है जो मुझ से आज करावेगा ॥ ५ ॥

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे । सस्य
मिव मर्त्यः पच्यते सस्य मिवाजायते पुनः ॥ ६ ॥

जैसे पहले लोग मृत्यु को प्राप्त हुवे हैं उस को पीछे देख तथा अगले लोगों की गति को आगे देख। प्राणि यवादि के सदृश जीर्ण हो कर मरता है। धान्य के ही सदृश उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

वैश्व नरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् । तस्यैतांशा-न्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥७॥

हे विवस्वान के पुत्र आप के घरों में अग्नि के समान विद्या और तप से युक्त अभ्यागत आया हुवा है ऐसेकी सज्जन लोग सत्कार पूर्वक प्रसन्नता को करते हैं अतः आप पाद्यादि के लिए जलादि को पास कीजिए ॥ ७ ॥

आशा प्रतीक्षे सङ्गतं सूनृतां चेष्ट पूर्ते पुत्र पशूंश्च सर्वान् । एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥८॥

जिस पुरुष के घर में ब्रह्मवित् अतिथि निराहार रहता है उस अल्प बुद्धि के ज्ञान वस्तु की चाहना आशा और अज्ञात वस्तु की कामना प्रतीक्षा कहलाती है इन दोनों सत्य गति से होने वाले फल, प्रिय वाणी, उस की निमित्त दयादि (यज्ञादि श्रौत कर्मों के फल को इष्ट, और अनाथ रक्षणादि स्मात कर्मों के फल को पूर्त कहते हैं) इन को भी और सब पुत्र पशु इन सब को सत्कार न किया हुआ अतिथि नाश करता है । अन्यत्र भी कहा है ॥८॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रति निवर्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥ ८ ॥

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः । नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्तिमेऽस्तु तस्मात

प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥९॥

हे ब्रह्म वित् ! आप अतिथि हैं अतएव नमस्कार करने के योग्य हैं। आप के लिए नमस्कार हो मेरा कल्याण हो। हे ब्रह्मन्। जो आप मेरे घर में तीन रात्रि अन्न जल के विना बसे इस कारण प्रति रात्रि एक एक के हिसाब से तीन वरों को अङ्गीकार करें ॥ ९ ॥

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो । त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत् प्रतीत एतत् त्रयाणांप्रथमं वरं वृणे ॥ १० ॥

हे मृत्यु ! गोतम गोत्रीय मेरा पिता मेरे प्रति शान्त चित्त, प्रसन्न मन, विगत रोष, जैसे होवे आप के भेजे हुवे मुझ को देख कर लब्ध स्मृति होकर कि यह वही मेरा पुत्र है जिस को मैंने मृत्यु के पास भेजा था बोले यह तीन में से पहला वर चाहता हूं ॥ १० ॥

यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः । सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्यु मुखात् प्रमुक्तम् ॥११ ॥

उद्दालक वंशी अरुण का पुत्र जैसा पहिले था वैसा ही मुझसे प्रेरित वा बोधित होकर तुझ पर विश्वास करने वाला होगा। शेषरात्रियोंमें भी वह सुख से सोवेगा और बीत रोष होकर तुझ को मौत के मुह से छुटा हुवा देखेगा ॥११॥

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति । उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १२ ॥

स्वर्ग लोक में कुछ भी भय नहीं है । न वहां पर तू मृत्यु है और न कोई बुढापे से डरता है । भूख और प्यास दोनों को तर कर शोक से वर्जित पुरुष स्वर्ग लोक में आनन्द करता है ॥ १२ ॥

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम् । स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥१३

हे मृत्यो ! सो तू स्वर्ग का साधन भूत ज्ञानाग्नि को जानता है उस को श्रद्धा रखते हुये मेरे लिये कहिये । जिस के यथा योग्य अनुष्ठान से स्वर्ग के अधिकारी जन अमरत्व को सेवन करते हैं । यही दूसरे वर से मांगता हूं ॥ १३ ॥

प्र ते ब्रवीमि तद् मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् । अनंतलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥१४॥

हे नचिकेता ! स्वर्ग के साधन भूत अग्नि को जानता हुआ तेरे लिए उस को मैं कहता हूं मेरे वचन को सुन वा जान तत्पश्चात् तू इस को विविध स्थानों में प्राप्त करने वाला

जगत की स्थिति का हेतु बुद्धि में स्थित वा व्याप्त जान ॥१४॥

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टकायावतीर्वा यथा वा । स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥ १५ ॥

उस के लिये सृष्टि की आदि में दर्शन के हेतु अग्नि का व्याख्यान किया । उस अग्नि से सिद्ध होने वाले यज्ञादि में जो वा जितनी । जिस प्रकार से ईंट चिननी चाहियें यह सब वर्णन किया । उस ने भी जिस प्रकार कहा था । उस को प्रत्यक्ष अनुवाद करके सुनाया । इस के अनन्तर उस के ऊपर वह प्रसन्न होता हुवा फिर भी बोला ॥ १५ ॥

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः । तवैव नाम्ना भवितायमाग्निः सृङ्कांचेमामनेकरूपां गृहाण ॥ १६ ॥

उच्च भाव से भावित मृत्यु प्रसन्न होकर उस से बोला कि फिर भी इस दूसरे वर के प्रसंग में तेरे लिये इस समय वर को देता हूं । यह विधान किया हुवा अग्नि तेरे ही नाम से प्रसिद्ध हागा और इस चित्र विचित्र माला को स्वीकार कर ॥ १६ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य संधिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू । ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां

शान्तिमत्यन्तमेति ॥ १७ ॥

नचिकेता के प्रति जिस का विधान किया वह नाचिकेत अग्नि कहाता है । उस को जो तीन बार चयन करे वह पुरुष तीन से सम्बन्ध को प्राप्त होकर वह तीन कर्म करने वाला जन्म मरण से पार हो जाता है । वेद रूप ब्रह्म यज्ञ को धारण करने वाले स्तुति के योग्य देव को जान कर और निश्चत करके अतिशय शान्ति को प्राप्त होता है । ॥ १७ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् । स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १८ ॥

जो ज्ञानवान् इस तिगुडड़े को जान कर चयन करता है वह मौत के बन्धनों को आगे से छिन्न भिन्न कर शोक से रहित हो कर स्वर्ग लोक में आनन्द करता है ॥ १८ ॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण । एतमग्निं तवैव प्रवदयन्ति जनास्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥ १९ ॥

हे नचिकेता ! यह अग्नि स्वर्ग का उपयोगी तुम्हारे लिए कहा गया जिस को दूसरे वर से तुम ने मांगा था । इस अग्नि को तुम्हारे ही नाम से मनुष्य लोग कहेंगे । हे नचिकेता । तीसरे वर को मांग ॥ १९ ॥

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायम-

स्तीति चैके । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ २० ॥

मनुष्य के मरने पर यह आत्मा है ऐसा कोई मानते हैं। और नहीं है ऐसा अनेक लोक मानते हैं। इस प्रकार जो यह सन्देह है सो आप से उपदेश पाया हुवा मैं इस को जानूं। वरों में यह तीसरा वर है ॥ २० ॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः। अन्यं वरं नचिकेता वृणीष्व मा मोपरीत्सीरती मा सृजैनम् ॥ २१ ॥

पहले इस विषय में देवताओं ने भी सन्देह किया था निश्चय यह आत्मज्ञान अति सूक्ष्म होने से सुगमता से जानने योग्य नहीं है। अतएव तुम और वर को मांगो। मुझ को ऋण के तुल्य मत दबावो, मेरे प्रति इस वर को त्याग दो ॥ २१ ॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ। वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥ २२ ॥

हे अन्तक! इस विषय में देवताओं ने भी सन्देह वा अन्वेषण किया है और तू भी जो सुगमता से जानने योग्य नहीं है ऐसा कहता है. इस विषय का कहने वाला तेरे तुल्य अन्य नहीं मिल सकता। इस वर के बराबर अन्य और कोई

वर नहीं है ॥ २२ ॥

शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्य मश्वान् । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ २३ ॥

सौ वर्ष पर्यन्त जीने वाले बेटे पोतों को मांग, बहुत से गाय बैल आदि पशु, घोड़े, हाथी, और सुवर्णादि तथा पृथिवी के बड़े माण्डलिक राज्य को मांग। और तू भी जितने वर्ष चाहता है जीवन धारण कर ॥ २३ ॥

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वां कामभाजं करोमि ॥ २४ ॥

जो इस वर के तुल्य वक्ष्यमाण वर को मानता है ऐश्वर्य के साधन धन, सदा की आजीविका को मांग। हे नचिकेता! तू बड़ी पृथिवी पर बढ़ने वाला हो! तुझ को सम्पूर्ण कामनाओं का भोग करने वाला करता हूं ॥ २४ ॥

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व । इमाः रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लंभनीया मनुष्यैः । आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥ २५ ॥

पृथिवी में जो २ कामनायें दुर्लभ हैं उन सब कामनाओं

को यथेष्ठ मांग। यह रथादि यानों सहित वादित्रादि सहित रमणीय स्त्रियां हैं इन मेरी दी हुइयों से अपनी सेवा शुश्रूषा करावो। निःसन्देह ऐसी स्त्रियां साधारण मनुष्यों से अप्राप्य हैं। हे नचिकेता! मौत को मत पूछ ॥ २५ ॥

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः। अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्य गीते ॥ २६ ॥

हे अन्तक! कल ही कल मनुष्य की सब इन्द्रियों के तेज का नाश कर देती हैं। सब जीवन भी अल्प ही है। अतएव प्राणि तेरे ही वाहन रहें और नाचना गाना भी तेरा ही रहा ॥ २६ ॥

न वित्तेन तर्पणीया मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ २७ ॥

मनुष्य धन से तृप्त नहीं हो सकता, जो तुझ मौत को हम ने देखा है तो धन को प्राप्त होंगे। जब तू चाहेगा तब तक जीवेंगे। मुझ को वर तो वही मांगना है ॥ २७ ॥

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यःक्वधस्थःप्रजानन्। अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोद नतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८ ॥

जरा से जीर्ण न होने वाले अमृत पुरुषों को प्राप्त हो कर पृथिवी के अधोभाग में स्थित, मरण धर्मा मनुष्य शरीरादि के नाश का अनुभव करता हुवा सुन्दर वर्ण और सुरत जन्य विनश्वर सुखों को शोचता हुवा कौन जानता हुवा बहुत बड़े जीवत्व में रमण करे ॥ २८ ॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् । योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥ २९ ॥

हे मृत्यु ! जिस आत्मज्ञान विषय में आत्मा कोई है वा नहीं, यदि है तो कहां है और कैसा है इत्यादि प्रकार से सन्देह करते हैं, जो अन्नत परमार्थ दशा में प्राप्त किया जाता है उस का हमारे प्रति उपदेश कर ! जो यह प्रसंग प्राप्त गुप्त वर मेरे मन में समाया हुवा है उस से भिन्न वर को मैं नहीं चाहता ॥ २९ ॥

इति प्रथमा वल्ली ।

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधुर्भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥

निःश्रेयस रूप कल्याण का मार्ग और है और अभ्युदय रूप रोचक मार्ग और ही है। वे श्रेय और प्रेय दोनों भिन्न २ प्रयोजन वाले मनुष्य को वासना रूप रज्जू में बान्धते हैं। उन दोनों में से श्रेय ग्रहण करने वाले का कल्याण होता है और जो प्रेय को ग्रहण करता है वह परमार्थ रूप प्रयोजन से भ्रष्ट हो जाता है ॥१ ॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभिप्रयसो वृणीते प्रेयो मंदो योगक्षेमाद्वृणीते ॥ २ ॥

अरोचक परन्तु कल्याण का मार्ग और रोचक परन्तु अकल्याण का मार्ग, यह दोनों मनुष्य को प्राप्त होते हैं। बुद्धिमान् इन दोनों को सम्यक प्राप्त हो कर विवेचना करता है। विद्वान ही प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग को सब ओर से ग्रहण करता है। मूर्ख धनादि के उपार्जन और रक्षण से प्रवृत्ति मार्ग को ही स्वीकार करता है ॥ २ ॥

स त्वं प्रियान्प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः। नैतां सृंकां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति

बहवो मनुष्याः ॥ ३ ॥

हे नचिकेता ! सो तैंने पुत्र पौत्रादि, सुन्दरी कामिनी आदि भोगों को उन की असारता को विचार कर छोड़ दिया। इस भोगैश्वर्य रूप शृंखला में नहीं फंसा जिस में बहुत मनुष्य फंस जाते हैं ॥ ३ ॥

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याऽभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवो-
ऽलोलुपन्तः ॥ ४ ॥

यह दोनों श्रेय और प्रेय मार्ग परस्पर बिरुद्ध, वैधर्म्य सूचक भिन्न २ हैं। विद्वानों ने अविद्या और विद्या नाम से जाना है। मैं तुझ नांचकेता को विद्या का चाहने वाला अर्थात् श्रेय पथगामी मानता हूं। अतएव तुझ को बहुत सी काम-नायें प्रलोभित नहीं कर सकीं ॥ ४ ॥

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्य-
मानाः । दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना
यथाऽन्धाः ॥ ५ ॥

अविद्या के बीच में पड़े हुवे अपने को धीर और पण्डित मानते हुवे कुटिल पथगामी इधर उधर घूमते हुए विक्षिप्त चित्त जैसे अन्धे से ले जाये गए अन्धे घूमते हैं ॥५॥

न सांपरायः प्रतिभाति बाल्यं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥६॥

धन के मोह से मुग्ध प्रमत्त विवेक रहित पुरुष को परमार्थ सम्बन्धी आंकार का ज्ञान वा विचार नहीं भाता। यही लोक है परलोक वा परमार्थ नहीं है ऐसा मानने वाला बार-बार मुझ मृत्यु के वश में प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानु-
शिष्टः ॥ ७ ॥

जो परमात्मा बहुतों को सुनने के लिए भी नहीं मिलता सुनते हुए भी अनेक जन जिस को नहीं जानते। इस परमात्मा का प्रवचन करने वाला कोई विरला ही होता है इस का पाने वाला कोई बड़ा विवेक शील ही होता है। विवेकी पुरुष से उपदेश पाया हुवा जानने वाला कोई ही होता है ॥ ७ ॥

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥८॥

साधारण मनुष्य से उपदेश किया हुवा भी यह आत्मा सुगमता से जानने के योग्य नहीं है। जो अनन्य भाव से परमात्मा की उपासना करते हैं ऐसे तन्मय और तत्परायण गुरुओं के उपदेश किए हुए इस आत्मा में विकल्प वा सन्देह नहीं है। वह ब्रह्म सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है इसके लिए तर्क करने योग्य नहीं है ॥ ८ ॥

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः
प्रष्टा ।९।

हे प्रेष्ठ यह आगम प्रसूता बुद्धि सुबुद्धि स्वकल्पित हेतुवों से नहीं बिगाड़नी चाहिए। गुरु से ही उपदेश की हुई बुद्धि सम्यक ज्ञान के लिए होती है। तू निश्चल, धैर्य वाला है तू जिस बुद्धि को प्राप्त हुवा है हे नचिकेता तेरे समान ही हम से पूछने वाला हो ॥ ९ ॥

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत् ।
ततो मयानाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि
नित्यम् ॥ १० ॥

मैं कर्म फल जन्य स्वर्गादि अनित्य हैं, ऐसा जानता हूं निःसंदेह अनित्य और स्थिर साधनों से वह नित्य और अचल ब्रह्म नहीं पाया जाता। इसी लिए मैंने जिस का अग्नी तुम्हारे प्राप्त विधान किया है वह अग्नि कर्मफल वासना से रहित हो कर चयन किया है। अतः अनित्य पदार्थों से नित्य ब्रह्म को परम्परा से प्राप्त हुवाहूं ॥ १० ॥

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम् ।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतो-
ऽत्यस्राक्षीः ॥ ११ ॥

हे नचिकेता ! तैंने कामनाओं की प्राप्ति को संसार को स्थिति का यज्ञादि के अनन्त फल को निर्भयता की पराकाष्ठा को बहुधा मनुष्य जिस का गान करते हैं ऐसे स्तुति समूह और प्रशंसा को ज्ञान चक्षु से देखकर धैर्य से त्याग दिया अतएव तू बड़ा बुद्धिमान है ॥ ११ ॥

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ
जहाति ॥ १२ ॥

विद्वान् बाह्य विषयों से चित्त वृत्ति को हटा कर आत्मा में लगाने से उस दुःख से जानने योग्य गुप्त, अन्तःकरण में भी व्याप्त, जीवात्मा में स्थित, दुर्गम होने से विस्मरण सनातन देव को मानकर सुख दुःख को त्याग देता है ॥ १२ ॥

एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीयꣳ हि लब्ध्वा विवृतꣳ सद्म
नाचिकेतसं मन्ये ॥ १३ ॥

मनुष्य इस वक्ष्यमाण धर्म के अधिकरण आत्मा को सुन कर, तथा अच्छे प्रकार ग्रहण करके, एवं बारम्बार अभ्यास करके इस सूक्ष्म ब्रह्म को प्राप्त होकर वह आनन्द रूप को प्राप्त होकर आनन्दित होता है। ऐसे ब्रह्म को तुझ नचिकेता के प्रति खुला है द्वार जिसका ऐसे स्थान के सदृश मानता हूं ॥ १३ ॥

अन्यत्र धर्मा दन्यत्राऽधर्मा दन्यत्रास्मात्कृताऽकृतात् । अन्यत्र
भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥

कर्तव्य रूप आचरण से पृथक अकर्तव्य से अलग इस कार्य और कारण से भिन्न, भूत काल से, भविष्यत् से वर्तमान से भी अतिरिक्त जिसको देखते हो उस को कहो ॥ १४ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमाम नन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्यों-
मित्येतत् ॥ १५ ॥

सब वेद जिस पदका बारम्बार वर्णन करते हैं सारे तप और नियमादि भी जिस का कथन करते हैं। जिस पद की इच्छा करते हुवे ब्रह्मचर्याश्रम का आचरण करते हैं उस पद को तेरे लिये संक्षेप से 'ओं' है यह कहता हूं ॥ १५ ॥

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा
यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १६ ॥

यह 'ओं' ही नाश न होने वाला ब्रह्म है यही सब से उत्तम अक्षर है इस ही अक्षर को जान कर जो जिस अर्थ को चाहता है उसको वह अर्थ अवश्य ही प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं
ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥

यह साधन श्रेष्ठ है यह आश्रय सर्वोपरि है इस आलम्बन को जान कर ब्रह्म लोक में महिमा को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्नबभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने
शरीरे ॥१८॥

सर्वज्ञ यह आत्मा न उत्पन्न होता है न मरता है किसी उपादान से उत्पन्न नहीं हुवा, कोई इस से भी उत्पन्न नहीं हुवा यह आत्मा जन्म नहीं लेता, विकार रहित अनादि सनातन है देह के नाश होने पर नहीं नष्ट होता ॥ १८ ॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुꣳ हतश्चेन्मन्यतेहतम्। उभौ तौ न विजानीतौनायꣳ हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥

यदि मारने को मारने वाला मानता है, तथा मारा हुवा अत्मा को मरा हुवा मानता है तो वे दोनों कुछ नहीं जानते। यह आत्मा किसी को नहीं मारता और न किसी से मारा जाता है ॥ १९ ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितोगुहा-याम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महि मानमात्मनः ॥ २० ॥

आत्मा सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म है बड़े आकाशादि से भी बड़ा है, वह इस प्राणि की बुद्धि में स्थित है उस आत्मा को महिमा बुद्धि के विमल होने से कामना रहित विगत शोक प्राणि देखता है ॥ २० ॥

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ २१ ॥

बैठा हुवा दूर पहुंचता है, सोता हुवा सब ओर जाता है उस आनन्द रूप देव को मुझ से सिवाय कौन जानने को योग्य है ॥ २१ ॥

अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २२ ॥

विनाश धर्म वाले पदार्थों में विनाश रहित चलाय मान पदार्थोंमें अचल अनन्त व्यापक आत्मा को जानकर धीर पुरुष शोच नहीं करता ॥ २२ ॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूꣳ स्वाम् ॥

यह आत्मा उपदेश से प्राप्त नहीं होता, बुद्धी से नहीं मिलता बहुत सुनने से भी नहीं जाना जाता। जोवात्मा जिस आत्मा को ही स्वीकार करता है उस से प्राप्त होने योग्य है यह आत्मा उस के लिये अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकाश करता है ॥ २३ ॥

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः । नाशान्तमान सोवापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ २४ ॥

अप कर्मों से जो उपरत नहीं हुवा वह इस आत्मा को नहीं प्राप्त होता। चवल चित्त भी नहीं पाता, संशयात्मा भी नहीं पाता और जिसने वाह्य इन्द्रियों को तो विषयों में जाने से रोक लिया है परन्तु मन जिसका तृष्णा में फसा हुवा है वह भी नहीं प्राप्त होता। केवल यथार्थ ज्ञानसे ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः । मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ २५ ॥

जिस ब्रह्म के ब्राह्मण और क्षत्रिय भी दोनों भक्ष होते हैं जिस का उपसेचन मृत्यु है वह परमात्मा जिस दशा में वा जैसा है इसप्रकार कौन जान सकता है ॥ २५ ॥

इति द्वितीया वल्ली

अथ तृतीया वल्ली ।

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे-
परार्द्धे । छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो-
ये च त्रिणाचिकेताः ॥१॥

सब से उत्तम हृदयाकाश में तथा बुद्धि में स्थित शरीर में अपने किये हुए कर्मों के फल को भोगते हुए अन्धकार, और प्रकाश के तुल्य ब्रह्म के जानने वाले कहते हैं। और जो तीन वार जिन्हों ने नाचिकेत अग्नि का सेवन किया ऐसे कर्म काण्डी पंच यज्ञों के करने वाले गृहस्थ भी ऐसा ही कहते हैं १

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् । अभयं
तितीर्षतां पारं नाचिकेतꣳ शकेमहि ॥२॥

जो यज्ञशीलों का पुलके समान है उस नाचिकेत अग्नि को हम जान सकते हैं और जो भवसिन्धु के पार तरने की इच्छा करने वालों का भय रहित साधन है उस सबसे उत्कृष्ट नाश रहित परमात्मा का भी जान सकते हैं ॥ २

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेव तु । बुद्धि-
न्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥३॥

आत्मा को रथि जान और शरीर को ही रथ जान और बुद्धि को सारथि जान और मन को ही लगाम जान ॥ ३ ॥

इन्द्रियाणि हयान हुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान् ।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥३॥

इन्द्रियों को घोड़े कहते हैं इन इन्द्रियों में शब्द स्पर्शादि को मार्ग कहते हैं। पण्डित लोग शरीर इन्द्रिय और मनसे युक्त आत्मा को भोगने वाला ऐसा कहते हैं ॥ ४ ॥

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।

तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥५॥

जो विषयों में लम्पट मनुष्य अनवस्थित मनसे सर्वदा युक्त होता है उस की इन्द्रियां सारथी के दुष्ट घोड़ों के समान वश में नहीं होती ॥ ५ ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।

तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥६॥

और जो विवेक सम्पन्न समाहित मनसे सर्वदा युक्त होताहै उसके चक्षुआदि सारथि के शिक्षित घोड़ों के समान वश में होते हैं ॥ ६ ॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।

न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥७॥

जो विवेक रहित मनके पीछे चलने वाला सदा पवित्र होता है वह उस शान्त पद को नहीं प्राप्त होता किन्तु जन्म मरण के प्रवाह को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।

स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥८॥

और जो विवेक सम्पन्न मनको जीतने वाला निरन्तर शुद्ध भाव युक्त होता है वह तो उस आनन्द पद का प्राप्त होता है जिस से फिर उत्पन्न नहीं होता ॥ ८ ॥

विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।

सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९ ॥

जो मनुष्य विवेक सारथि वाला एवं मन की लगाम को रोकने वाला है वह मार्ग के पार विष्णु के सर्वोत्कृष्ट उस पद को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।

मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥१०॥

इन्द्रियों से निश्चय विषय सूक्ष्म हैं और विषयों से मन सूक्ष्म है तथा मन से बुद्धि सूक्ष्म है बुद्धि से महतत्व सूक्ष्म है ॥ १० ॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः ॥११॥

महतत्व से अव्याकृत प्रकृति सूक्ष्म है अव्यक्त प्रकृति से पुरुष अत्यन्त सूक्ष्म है । पुरुष से सूक्ष्म कुछ भी नहीं है । वही स्थिति की सीमा वही अन्तिम अवधि है ॥११॥

एष सर्वेषु भूतेषु गूढ़ात्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः ॥१२।

सब भूतों में यह गुप्त आत्मा स्थूल दृष्टि से नहीं देखा

जाता, किन्तु तीव्र सूक्ष्म बुद्धि से सूक्ष्म दर्शियों से देखा जाता है ॥ १२ ॥

यच्छेद्वाङ्मनसि प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त
आत्मनि ॥१३॥

प्राज्ञ पुरुष मन में वाणी को लगा देवे, उस मन को ज्ञान के उपकरण बुद्धि में ठैरावे, बुद्धि को उस के कारण महतत्व में युक्त करै, उस महतत्व को शान्त आत्मा में ठहरा देवे ॥१३॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत । क्षुरस्यधारा
निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवया वदन्ति ।१४

उठो ! जागो ! श्रेष्ठ गुरुवों को प्राप्त होकर जानो, तीक्ष्ण, अति कठिन छुरे की धारा के समान कवि लोग उस मार्ग को दुःख से प्राप्त होने योग्य कहते हैं ॥ १४ ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्ध-
वच्चयत् । अनाद्यनन्तं महतःपरं ध्रुवं निचाय्य तं
मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥१५॥

ब्रह्म, शब्द नहीं जो कान से जाना जावे, स्पर्श नहीं जो त्वचा से ग्रहण किया जावे, रूप नहीं जो चक्षु का विषय हो तथा रस नहीं जो रसना का विषय हो, और गन्ध वाला नहीं जो घ्राण गम्य हो, अतएव वह अविनाशी, सदा एक

रस, अनुत्पन्न, सीमा रहित, महतत्व से भी सूक्ष्म, अचल है उस का सम्यक् जान कर मृत्यु के मुख से छूट जाता है ॥१५॥

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् । उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ॥१६॥

नचिकेता से ग्रहण किये गये, मृत्यु से उपदेश दिये गये, प्राचीन आख्यान को कह कर, सुन कर भी विवेकी पुरुष ब्रह्म लोक में बड़ाई को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति ॥१७॥

जो पुरुष सावधान हो कर इस परम गुप्त आख्यान को ब्राह्मणों का सभा में वा श्राद्ध काल में सुनावै वह अनन्त फल की प्राप्ति के लिये समर्थ होता है ॥ १७ ॥

इति तृतीया वल्ली समाप्ता

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् । कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मान मैक्षद् वृत्तचक्षुरमृतत्व मिच्छन् ॥१॥

परमात्मा ने इन्द्रियों को वाह्य विषयों पर गिरने वाला किया है इस कारण मनुष्य वाह्य विषयों को देखता है अन्तरात्मा को नहीं । कोई ध्यान शील विवेकी पुरुष मोक्ष को चाहता हुवा अन्तः करणस्थ ईश को ध्यान योग से देखता है॥ १॥

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।

अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥

जो अज्ञानी पुरुष बाह्य पदार्थों के संयोग से उत्पन्न हुए विषय वासनाओं के पीछे भागतेहैं , वे फैले हुए मृत्यु के पाश को प्राप्त होते हैं और विवेकी पुरुष निश्चल मोक्ष को जान कर यहां अनित्य पदार्थों में सुख को नहीं चाहते ॥ २ ॥

येन रूपं रसं गंधं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान् एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते एतद्वै तत् ॥३॥

जिस इस ही ईश की सत्ता से प्राणी रूप, रस,

गन्ध, स्पर्श, और रति जन्य सुखों को भी जानता है तब यहां क्या शेष रह जाता है यही वह ब्रह्म है ॥३॥

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानु पश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वाधीरो न शोचति ॥४॥

जिस से स्वप्नावस्था के अन्त, और जाग्रत अवस्था के अन्त इन दोनों को अनुकूल देखता है उस सब से बड़े व्यापक ईश को मान कर विवेक शील शोक से व्याकुल नहींहोता ॥४॥

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ।
एतद्वैतत् ॥५॥

जो पुरुष इस कर्म फल भोगने वाले जीवात्मा के समीप बसी हुए और होने वाले जगत् के स्वामी परमात्मा को जानता है उससे भय को प्राप्त नहीं होता है यही उस ब्रह्म ज्ञान का फल है ॥ ५ ॥

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत । गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत एतद्वैतत्॥६॥

जो जीवात्मा पंच भूतों से पहिले प्रकट हुवा ज्ञान वा प्रकाश से भी पहिले वर्तमान बुद्धि में प्रवेश कर कार्य कारण के के साथ स्थित परमात्मा को देखता है यह वह ईश है ॥ ६ ॥

या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी । गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत एतद्वैतत् ॥७॥

जो प्रकाश युक्त अखण्डित भ्रम और सन्देह से रहित बुद्धि प्राण के सयम से उत्पन्न होतीहै और जो ठहरे हुए अन्तः करण में प्रवेश कर भूतों के साथ प्रकट होती है यही ब्रह्म ज्ञान का साधन है ॥ ७ ॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणी-
भिः । दिवे दिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनु-
ष्येभिरग्निः । एतद्वैतत् ॥ ८ ॥

ज्ञानियों से कर्म काण्डि मनुष्यों से भी अग्नि परमात्मा गर्भिणी स्त्रियों से अच्छे प्रकार धारण किये हुए गर्भ के समान तथा दोनों अरणियों में व्याप्त अग्नि के समान प्रति दिन उपासना करने योग्य है वही ब्रह्म है ॥ ८ ॥

य श्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति । तं देवाः
सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन । एतद्वैतत् ॥ ९ ॥

जहां से सूर्य उदय होताहै और जिस में ही लीन हो जाता है उसको सारे देवता प्राप्त हैं उस ब्रह्म का कोइभी उल्लंघन नहीं कर सक्ता यही वह ब्रह्म है ॥ ९ ॥

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह । मृत्योः स
मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥

जो ब्रह्म इस जन्म में हमारे कर्मों का व्यवस्थापक है वह परजन्म में भी हमारा नियन्ता है। और जो पर जन्म में हमारा ईषिता है वह यहां पर भी अध्यक्ष है जो पुरुष इस ब्रह्म में भिन्न भाव की सी दृष्टि करता है वह मरण से मृत्यु को

पाता है ॥ १० ॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥११॥

यह उस ज्ञान पूत बुद्धि से ही जानने योग्य है इस में भेद भाव कुछ भी नहीं है । जो भेद वादी इस ईश में अनेकत्व की सी कल्पना करता है वह यम को जाता है ॥ ११ ॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् १२॥

भूत और भविष्यत का मालिक पूर्ण अंगुठे के बराबर हृदय पुण्डरीक में रहने वाला शरीर के बीच में रहता है उस के ज्ञान से कोई ग्लानि नहीं पाता यही वह ईश है ॥ १२ ॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः एतद्वै तत् ॥१३

वही अंगुष्ठ मात्र स्थानीय परिपूर्ण ईश्वर धूम रहित ज्योती के समान अतीत और अनागत का स्वामी है । वही आज, और कल है । यही वह ब्रह्म है ॥ १३ ॥

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान्पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥१४॥

जैसे विषम देश में वर्षा हुवा जल निम्न स्थलों में बहता है इसी प्रकार गुणों को गुणो से अलग देखता हुवा उन्हीं गुणों का अनुधावन करता है ॥ १४ ॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तंतादृगेव भवति ।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥ १५ ॥

हे गौतम ! नचिकेता ! जैसे स्वच्छ और सम देश में स्वच्छ जल सींचा हुवा वैसाही होता है । इसी भान्ति जानने वाले मुनि का आत्मा ज्ञाता होता है ॥१५॥

इति चतुर्थी वल्ली ।

अथ पंचमी वल्ली ।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः । अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वै तत् ॥ १ ॥

सरल चित्त वाले अज के ग्यारह दरवाजे वाले शरीर को अनुष्ठान करके नहीं सोचता । और मुक्त हवा छुटता है यही उस विज्ञान का फल है ॥ १ ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरो-
णसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋत-
जा अद्रिजा ऋतम्बृहत् ॥२ ॥

हंस, शुद्ध देश में स्थित, अनेक योनियों में वास करने वाला, हृदयाकाश में स्थित, होता, स्थल चारी, अभ्यागत, कुटी-चर, मनुष्य शरीर धारी, देव ऋषि शरीर धारी, सत्य में प्रति-ष्ठित, नभचारी, जल चर, पृथ्वी में उत्पन्न होने वाला, (गवि भूमौ उद्भिज रूपेण जातः गाजा, रितात् जातः रितजा, पर्वते

भ्यो नद्यादि रूपेण जातः अद्रिजा, यज्ञ औषध्यादि (ऋते सत्ये यज्ञे वा सीदति तिष्ठति इति ऋत्सत्: व्योम्नि आकाशे सीदति गच्छति इति व्योम सत्) पर्वतों में उत्पन्न होने वाला भी अपने स्वरूप से अविचल है ॥ २ ॥

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥३॥

जो साधक प्राण वायु को हृदय के ऊपर मस्तक में ले जाता है, अपान वायु को हृदय से नीचे उदर में फैंकता है, बीच में स्थित सेवनीय जीवात्मा को समस्त प्राण और इन्द्रियां सेवन करते हैं ॥ ३ ॥

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ।
देहाद् विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते ।एत-
द्वैतत् ॥४॥

इस शरीरस्थात्मा के विध्वंस होते हुये देह से पृथक होते हुए क्या परिशेष रह जाता है ? यही उस ब्रह्म प्राप्ति का साधन है ॥ ४ ॥

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन । इतरेण
तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥ ५ ॥

कोई मनुष्य प्राणापान से नहीं जीता है, किन्तु जिस में यह दोनों आश्रित हैं उस ईश से जीते हैं ॥ ५ ॥

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।

यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥ ६ ॥

हे गौतम ! कृपा पूर्वक तेरे लिये इस गुप्त अनादि आत्मा को कहूंगा यथा मृत्यु को प्राप्त होकर आत्मा होता है ॥ ६ ॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७ ॥

कोई प्राणि अपने २ कर्म और तज्जनित वासनाओं के अनुसार शरीर धारण करने के लिये योनियों को प्राप्त होते हैं । कोई स्थावर योनियों को मरणान्तर प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥ ८ ॥

जो यह पुरुष यथेच्छ सब जगत् को रचता हुवा सोते हुये जीवों में जागता है वही शुद्ध, वही सब से बड़ा, वही अपरिणामी कहा जाता है उसी ब्रह्म में सब लोक ठैरे हुए हैं । इस को कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता । यही वह ब्रह्म है ॥ ८ ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ९ ॥

जैसे एक ही अग्नि लोक में व्याप्त हुवा प्रत्येक रूपवान वस्तु के तुल्य रूप वाला हो रहा है वैसे ही एक सब का अन्तर्यामी परमात्मा प्रत्येक वस्तु के तुल्य रूप वाला प्रतीत होता है किन्तु उन के रूपादि धर्मों से वह पृथक है ॥ ९ ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव । एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति रूपो बहिश्च ॥ १० ॥

जैसे एक ही वायु लोक में फैला हुवा प्रत्येक रूप के तुल्य रूप वाला हो रहा है वैसे ही एक सब प्राणियों का आत्मा प्रति रूप वाला होता हुवा उन से पृथक है ॥ १० ॥

सूर्यो यथा सर्व लोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११ ॥

जैसे सूर्य समग्र संसार की आंख है पर चक्षु सम्बन्धी बाह्य दोषों से लिप्त नहीं होता वैसे ही सर्व भूतान्तर आत्मा उन से अलग संसार के दुःख से लिप्त नहीं होता ॥ ११ ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषां ॥ १२ ॥

एक सब जगत् को वश में रखने वाला अन्तर्यामी है जो एक रूप को नाना प्रकार का करता है । जो ध्यान शील

उस आत्मा में स्थित परमात्मा को देखते हैं उन को सनातन सुख प्राप्त होता है अन्य संसारी पुरुषों को नहीं ॥ १२ ॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो-
विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति
धीरास्तेषाम् शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥१३॥

अनित्य पदार्थों में नित्य, चेतनों में भी चेतन, बहुतों में एक है जो जीवों के प्रति कामनाओं को विधान करता है उस अन्तर्यामी को जो ध्यान शील देखते हैं उन को परम शान्ति है औरों को नहीं ॥ १३ ॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखं । कथंनु
तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥ १४ ॥

जिस परमानन्द को "वह यह है इस प्रकार अंगुलो निर्देश से कहने अयोग्य मानते हैं उस को कैसे जानूं क्या वह प्रकाशित होता है वा स्वयं प्रकाश करता है ॥ १४ ॥

न तत्रसूर्यो भाति नचन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भा-
न्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्त मनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १५ ॥

उस में सूर्य नहीं प्रकाश कर सकता चन्द्र और तारागण का प्रकाश भी नहीं यह बिजलियां भी वहां नहीं चमक सकतीं । यह अग्नि कहां से प्रकाश करै किन्तु उस ही स्वयं प्रकाशमान् से सब प्रकाशित होते हैं । उस के प्रकाश से यह

सब प्रकाशित होता है ॥ १५ ॥

इति पंचमी वल्ली समाप्ता।

अथ षष्ठी वल्ली ।

ऊर्ध्वमूलो वाक्शाख एषोऽश्वत्थःसनातनः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥१॥

ऊपर को मूल है जिस का, नीचे को शाखा हैं जिसकी ऐसा यह अनित्य संसार रूप वृक्ष प्रवाह से अनादि है। उक्त वृक्ष जिस के आधार में है वह ब्रह्म है ॥ १ ॥

यदिदं किंच जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्। महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२॥

जो कुछ संसार है यह सब प्राण में चेष्टा करता है और उसी से उत्पन्न हुवा है वह हाथ में लिये हुए वज्र के समान भय का हेतु है। जो इस को जानते हैं वे मृत्यु से रहित होते हैं ॥ २ ॥

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः । भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः ॥३॥

इस के भय से अग्नि जलता है, सूर्य तपता है, इन्द्र और वायु चमकते और चलते हैं तथा पांचवा काल

दीखता है ॥ ३ ॥

इह चेदशकद्बोद्धुमप्राक् शरीरस्यविस्रसः । ततः
सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥

यदि इस जन्म में शरीर के नाश होने से पहले जानने को समर्थ होवे तो संसार के बन्धन से छूट जाता है नहीं तो न जानने से विरचित लोकों में शरीर धारण करने के लिये समर्थ होता है ॥ ४ ॥

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथास्वप्ने तथा पितृ लो
के । यथाप्सु परीव ददृशे तथा गंधर्व लोके छाया
तपोरिव ब्रह्मलोके ॥५ ॥

जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब दीखता है तैसे शुद्ध अन्तः करण में आत्मा प्रतिभासित होता है। जैसे स्वप्नावस्था में जागृत् वासनोद्भूत संस्कार होते हैं तैसे पितृ लोक में आत्मा का दर्शन होता है। जैसे जलों में चारों ओर से अवयव दीखते हैं तैसे गन्धर्व लोक में आत्मा दीखता है। छाया और आतप के समान ब्रह्म लोक में स्पष्ट तया अवगत होता है ॥ ५ ॥

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौच यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धिरो न शोचति ॥६॥

अपने २ रूपादि अर्थों को ग्रहण करने के लिये अपने २ अग्न्यादि कारण से पृथक उत्पन्न हुये इन्द्रियों का उस आत्मा से अत्यन्त पार्थक्य है। जो उत्पत्ति, और विनाश, एवं

प्रादुर्भाव या तिरोभावादि धर्म भी आत्मा के नहीं इस प्रकार ज्ञान कर विवेकी शोक नहीं करता ॥ ६ ॥

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्वमुत्तमम् ।
सत्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥ ७॥
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥ ८

इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से ऊपर महतत्व है, महतत्व से प्रधान कारण, प्रधान से निश्चय सब में व्यापक अलिंग परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म है जिस को जान कर जन्तु छूट जाता है और मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ७,८ ॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ९ ॥

इस का समक्ष में कोई रूप नहीं ठहरता, इस को कोई भी आंख से नहीं देख सकता, हृदयस्थ मनन करने वाली बुद्धि से प्रकाशित हुवा जाना जाता है। जो इस को जानते हैं वह अमर होते हैं ॥ ९ ॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ॥१०॥

जब पांच ज्ञानेन्द्रियां मन के साथ ठहर जाती है और बुद्धि भी विरुद्ध वा विविध चेष्टा नहीं करती उस को मुक्ति

की दशा कहते हैं ॥ १० ॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥११॥

उस अचल इन्द्रियों के रोकने को योग मानते हैं। तब प्रमाद रहित होता है जिस कारण यह योग शुद्ध संस्कारों का प्रवर्त्तक, तथा अशुभ संस्कारों का निवर्त्तक है ॥ ११ ॥

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥१२॥

न आंख से, न मन से, न वाणि से ही पाने योग्य है ऐसे कहते हुए पुरुष से अतिरिक्त वह क्योंकर प्राप्त हो सकता है ॥ १२ ॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥१३॥

अस्ति, नास्ति इन दोनों में तत्व की भावना से है ऐसा ही जानना चाहिये है, ऐसा ही जानने वाले को तत्व भाव प्रसन्न होता है ॥ १३ ॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिश्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतोभवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १४ ॥

जब सम्पूर्ण वासनायें जो इस के हृदय में बसी हुई हैं छूटती है तब मनुष्य मुक्त होता है इस में परम पुरुष को सम्यक प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥१५॥

जब इस संसार में हृदय की सारी गांठें टूट जाती हैं तब मनुष्य मुक्त होता है इतना ही शास्त्र का उपदेश है ॥ १५ ॥

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥१६॥

हृदय की एक सौ एक नाडि हैं। उन में से एक मस्तक में जा निकली है उस नाड़ि के साथ मस्तक के छिद्र से निकलता हुवा जीवात्मा मोक्ष को प्राप्त होता है। अन्य शत नाड़ियें प्राण के निकलने में नाना विधि गतियों की हेतु होती हैं ॥ १६ ॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जानानां हृदये सन्निविष्टः । तं स्वाच्छारीरात्प्रवृहेन्मुंजा दिवेषीकां धैर्येण । तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥१७॥

जो अन्तरात्मा पुरुष अंगुष्ठ मात्र है वह निरन्तर मनुष्यों के हृदयों में अवस्थित है। उस को धैर्य से मूंज से जैसे सींक को निकालते हैं ऐसे अपने शरीर से पृथक करै। उस को मरने वाला पवित्र जाने ॥ १७ ॥

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्यो

एवैवं यो विदध्यात्ममेव ॥१८॥

अब फल कहते हैं मृत्यु से कही गई इस विद्या को और सम्पूर्ण योग विधि को प्राप्त हो कर नचिकेता उस को प्राप्त हुवा और विरक्त मृत्यु से रहित हुवा। अन्य भी जो अध्यात्म विद्या को ही इस प्रकार जानता है वह भी इस संसार से से विरक्त हो कर मृत्यु रहित हो जाता है ॥ १८ ॥

सह नाववतु सह नो भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥१९॥

परमेश्वर हम दोनों गुरु शिष्यों की एक साथ रक्षा करें। हम दोनों का साथ २ पालन करें। हम दोनों आत्मिक बल को साथ २ प्राप्त करें। हम दोनों का पढ़ा पढ़ाया प्रभावोत्पादक वा फल दायक हो। हम दोनों कभी आपस में द्वेष न करें और ईश्वर की कृपा से हमारे आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों प्रकार के ताप शान्त हों ॥ १९ ॥

इति षष्ठी वल्ली समाप्ता

इति कठोपनिषद्

अथ माण्डूक्योपनिषद् ।

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥१॥

यह सब 'ओं' यह अक्षर है इस ओं का उपव्याख्यान है। भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् काल यह सब ओंकार ही है । और जो इस से अतिरिक्त त्रिकालातीत है वह भी ओंकार ही है ॥ १ ॥

सर्वꣳ ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ॥२॥

निश्चय यह सब ब्रह्म है, यह आत्मा ब्रह्म, यह आत्मा चार पाद वाला है ॥ २ ॥

जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥३॥

जाग्रदवस्था है स्थान जिस का, बाह्य विषयों में बुद्धि रखने वाला, सात अंग वाला, उन्नीस मुख वाला, स्थूल भोजी, सब का नेता, पहिला पाद है ॥ ३ ॥

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रवि-

विक्तभुक्तैजसो द्वितीयः पादः ॥४॥

स्वप्नावस्था है स्थान जिस का, भीतरी बुद्धि वाला, सात अङ्ग वाला, उन्नीस मुख वाला, वासना मात्र का भोजा प्रकाश रूप से अवभाषित दूसरा पाद है ॥ ४ ॥

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥५॥

जब सोया हुवा किसी अभिलाष को नहीं चाहता, किसी स्वप्न को नहीं देखता वह सुषुप्त है । सुषुप्ति है स्थान जिस का कारणभावापन्न बुद्धि जिस में जड़ हो जाती है, आनन्द मय निश्चय आनन्द भोजी, चेतनता का द्वार, भूत भविष्यत् का जानने वाला तीसरा पाद है ॥५॥

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥६॥

यह ओं सब का ईषिता है, यह सब का ज्ञाता है, सब का नियन्ता है, यह सब का जिस लिये भूतों के उत्पत्ति और नाश होते हैं इस लिए कारण है ॥ ६ ॥

नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नाभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं

प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥७॥

भीतर का ओर बुद्धि वाला नहीं है, न बाहर की ओर बुद्धि वाला है, न भीतर और बाहर दोनों ओर बुद्धि वाला है, न घनीभूत बुद्धि वाला है, न बुद्ध वाला है, न बुद्धि हीन है। अदृश्य, अशब्द, अग्राह्य, अलिङ्ग, अचिन्तनीय, अकथनीय, एकात्म प्रत्यय ही है सार जिस का, जाग्रदादि प्रपंच जहां शान्त हो जाते हैं, अविकृत, आनन्द यम भेद विकल्प रहित, चौथा पाद मानते हैं। वह आत्मा है वह जानने योग्य है ॥ ७ ॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति ॥८॥

वह यह आत्मा अक्षर में अधिष्ठित है, वह अक्षर ओंकार है, वह ओं मात्राओं में अधिष्ठित है और मात्रायें पाद हैं अकार उकार मकार बस ॥ ८ ॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥९॥

जाग्रदवस्था है स्थान जिस का वैश्वानर संज्ञक अकार पहली मात्रा है। उस की प्राप्ति होने से वा पहिले होने से निश्चय सब कामनाओं को पाता है और पहले होता है जो इस प्रकार जानता है ॥ ९ ॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याऽब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद ॥ ०॥

स्वप्न स्थान वाला तैजस संज्ञक उकार दूसरी मात्रा है उस के उत्कृष्ट होने से या मध्यस्थ होने से निश्चय ज्ञान के विस्तार को बढ़ाता है और तुल्य होता है। इस के कुल में ब्रह्म का न जानने वाला नहीं होता जो इस प्रकार जानता है ॥ १० ॥

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा । मिनोति ह वा इदꣳ सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥११॥

सुषुप्ति स्थान वाला प्राज्ञसंज्ञक मकार तीसरी मात्रा है इस के मान से वा एकी भाव से निश्चय इस सब को मान करता है और आत्म मय होता है जो इस भान्ति जानता है ॥ ११ ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार । आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥१२॥

चौथा पाद मात्रा रहित, व्यवहार के अयोग्य, कल्पनातीत कल्याणरूप, भेद वर्जित है इस प्रकार ओंकार है।

आत्मा ही आत्मा से आत्मा में पवेश करता है जो इस प्रकार जानता है ॥ १२ ॥

इति माण्डूक्योपनिषद् समाप्ता ।

अथ मुण्डकोपनिषद् ।

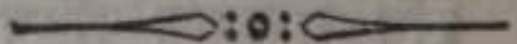

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्य गोप्ता स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह ॥१॥

ब्रह्मा देवताओं में सब का उत्पादक, रक्षक उत्पन्न हुवा। उस ने अथर्वा संज्ञक अपने बड़े पुत्र को सब विद्याओं में श्रेष्ठ मुण्डक ब्रह्म विद्या का उपदेश किया ॥ १ ॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम् । स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजो अंगिरसे पराबराम् ॥२॥

अथर्वा को जिस का ब्रह्मा ने उपदेश किया अथर्वा ने अंगिरस ऋषि के ताईं उस को कहा उस ने भारद्वाज गोत्र वाले सत्यवाह को और सत्यवाह ने अंगिरा को परा और अपरा विद्या का उपदेश किया ॥ २ ॥

शौनको हि महाशालोअंगिरसं विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ । कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥३॥

सुना है महागृहस्थी शौनक ने विधि पूर्वक अंगिरा ऋषि

के समीप जाकर पूछा कि हे भगवन् किसके जानने पर यह सब जाना जाता है ॥ ३ ॥

तस्मै स होवाच द्वे विद्ये वेदितव्य इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति पराचैवा परा च ॥४॥

निश्चय करके शौनक के ताईं अंगिरा ऋषि बोला दो विद्या जाननी योग्य हैं कि परा और अपरा भेद से विद्या दो प्रकार की है ॥ ४ ॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणम् । निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥५॥

उन दोनों के मध्य में ऋग्वेद, यजुर्वेद अथर्ववेद, शिक्षा याज्ञवल्क्यादि कृत, कल्पशास्त्र कात्यायनादिरचित, व्याकरणपाणिन्यादि निर्मित, निरुक यास्कादि मुनिविरचित; छन्द पिङ्गलाचार्य निर्मित, ज्योतिष सूर्य विरचित, यह अपरा विद्या है और जिस से अक्षर की अधिगम प्राप्त होती है वह परा है ॥ ५ ॥

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं तद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥६॥

जो वह ज्ञानेन्द्रियों का विषय नहीं कर्मेन्द्रियों का विषय नहीं उस का कोई गोत्र नहीं रक्त पीतादि वर्णों से

रहित, चक्षु श्रोत्रादि से रहित, हस्त पादादि से रहित, सर्व व्यापक, और जो अत्यन्त सूक्ष्म है उस वृद्धि और क्षय से रहित नित्य विभु इयत्ता से रहित चराचर सृष्टि के कारण को विवेकी पुरुष देखते हैं ॥ ६ ॥

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामो-
षधयः सम्भवन्ति । यथा सतः पुरुषात्केशलोमा-
नि तथाऽक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥ ७ ॥

जैसे मकड़ी अपनी नाभि से जाला सृजती है और उस को समेट लेती है और जिस तरह पृथिवी से अन्नादि ओषधियें उत्पन्न होती हैं और जैसे जीते पुरुष से केश और लोम उत्पन्न होते हैं उसी तरह ब्रह्म से सृष्टि काल में संसार उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते । अन्ना-
त्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥८॥

तप से ब्रह्म जाना जाता है उस से अन्न का अविर्भाव होता है अन्न से प्राण, उस से मन, मन से सत्य, लोक, लोकों में कर्म कर्मों में उन के फल यथा क्रम उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः । तस्मादे-
तद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ॥९॥

जो अक्षराख्य परमात्मा सामान्य रूप से सर्व वेत्ता में और विशेष रूपेण सर्व वेत्ता है जिस का सृष्टि को जानना ही तप है। उसी से यह हिरण्यगर्भाख्य सूर्य चन्द्रादि सब

भुवन नाम रूप वाला कार्यान्तर जगत् और अन्न उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

इति प्रथम मुण्डके प्रथमः खण्डः

अथ प्रथम मुण्डके द्वितीय खण्डः ।

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यं-
स्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि । तान्याचरथ
नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य
लोके ॥ १ ॥

वह यह बात सत्य है कि मन्त्रों में जिन अग्नि होत्रादि कर्मों को वेदवेत्ता देखते थे वह कर्म त्रेता में अनेक तरह से विस्तृत थे उन कर्मों का हे सत्य कामनाओं वालेलोगो नियम पूर्वक आचरण करो क्योंकि यही तुम्हारा इस मानव देह में पुण्य रूप कर्मों का मार्ग है ॥ १ ॥

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाज्य भागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धया
हुतम् ॥ २ ॥

निश्चय करके जब समिधाओं में अग्नि के प्रदीप्त होने पर अग्नि की ज्वाला लपटें मारती हैं तब आज्य भाग नामक दो आहुतियं क्रम से मध्य में देवे श्रद्धा से किया हुआ हवन

फल दायक होता है ॥ २ ॥

यस्याग्निहोत्र मदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमना-
ग्रयणमतिथिवर्जितञ्च । अहुतमवैश्वदेवमविधिना
-हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान्हिनस्ति ॥३॥

जिस का अग्नि होत्र दर्शेष्टि से रहित चतुर्मासेष्टि से रहित शरदादि ऋतुओं में जो दृष्टि की जाती हैं उन से वर्जित जो समय पर नहीं किया जाता जो वलि वैश्वदेव कर्म से रहित है और जो विधि पूर्वक हवन है वह उस यजमान के सात लोकों तक नाश कर देता है ॥ ३ ॥

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च
सुधूम्रवर्णा । स्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्तजिह्वाः ॥४॥

काले वर्ण वाली भयङ्कर रूप वाली और मन जैसे शीघ्र वेग वाली और रक्त वर्ण वाली और जो धूम्र के समान वर्ण वाली और कृष्ण आदि सर्व वर्णों (रंग) से युक्त यह दिव्य रूप प्रकाश मान सात जिह्वा हैं ॥४॥

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयोह्या-
ददायन्। तन्नयन्त्येताः सूर्य्यस्य रश्मयो यत देवानां
पतिरेकोधिवासः॥५॥

निश्चय कर के उक्त प्रकाशमान् अग्नि की जिह्वाओं में नियत समय पर जो अग्नि होत्र करता है यह आहुतियें प्र.

हण करती हुई सूर्य की किरणें होकर वहां पहुंचाती हैं जहां पर देवताओं का पति इन्द्र एक अधि पति होकर वर्तमान है ॥

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति । प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥६॥

प्रकाश वाली आहुतियें मधुर वाणी बोलती हुई सत्कार पूर्वक आइये २ इस तरह कहती हुई सूर्य की किरणों द्वारा उस यजमान को लेजाती हैं कि यह तुम्हारा पवित्र शुभ कर्म का फल रूप ब्रह्म लोक है ॥ ६ ॥

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं तेपुनरेवापियन्ति ॥ ७ ॥

निश्चय करके ये पूर्वोक्त यज्ञरूप नौकायें जो तरने के साधन कथन किये हैं अदृढ़ हैं जिन मे सोलह ऋत्विज यजमान और उन की पत्नी कथन किये हैं जो अविवेकी पुरुष इन को श्रेष्ठ मान कर प्रसन्न होते हैं वह निश्चय करके जरा और मृत्यु को पाते है ॥७॥

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितम्मन्यमानाः । जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ८ ॥

अविद्या में वर्तमान अपने आप को धीर और पण्डित

मानने वालों को निरन्तर क्लेश होता है मूर्ख लोग अन्धे के पीछे चलने वाले अन्धे जैसे दुःख भोगते हैं वैसे ही अवि. द्यान्धकार में पड़े हुए अविवेकी पुरुष चारों ओर से क्लेश को पाते हैं ॥८॥

अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्य-
भिमन्यन्ति बालाः। यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रा-
गात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ ९ ॥

बालक अज्ञानी पुरुष अविद्या में बहुत प्रकार से वर्त-मान हुए हम कृतार्थ हैं यह मानते हैं जिस कारण कर्मी लोग फल में राग के कारण उस के परिणाम को नहीं जानते ॥९॥

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते
प्रमूढ़ाः। नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेनुभूत्वेमं लोकं
हीनतरं वाविशन्ति ॥ १० ॥

धन तथा सांसारिक मोह रूप अज्ञान से युक्त पुरुष इष्टयागादि और आपूर्त्त वापी कूपतडागादि कर्मों को श्रेष्ठ मानते हुए इस के अतिरिक्त अन्य कोई कल्याण का मार्ग नहीं यह जानते हैं वह स्वर्ग के ऊपर अपने किये हुये कर्मों को अनुभव करके इस लोक को और इस से भी अधिक नर्क लोक को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो
भैक्षचर्यां चरन्तः। सूर्यद्वारेण ते विरजा प्रयान्ति

यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ११ ॥

जो पुरुष शान्त चित्त वाले विद्वान भिक्षा से अपनी वृत्ति करते हुए वन में अथवा एकान्त देश में रह कर तप और श्रद्धा का सेवन करते हैं वह निष्पाप हो कर (सूर्य द्वारेण) ज्ञान द्वारा वहां जाते हैं जहां निश्चय करके वह मृत्यु से रहित अव्ययात्मा पुरुष है ॥ ११ ॥

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्ना-
स्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छे-
त्समित्पाणिं श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १२ ॥

ब्रह्म विद्या का अधिकारी कर्म से प्राप्त होने वाली अवस्था को परीक्षा करके वैराग्य को प्राप्त होवे क्योंकि कार्य रूप कर्मों से नित्य शुद्ध बुद्ध ब्रह्म नहीं प्राप्त होता उस के विज्ञानार्थ वह जिज्ञासु हाथ में समिधा लेकर वेदवेत्ता ब्रह्म परायण गुरु को ही प्राप्त हो ॥ १२ ॥

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशांत चित्ताय
शमान्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच
तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥१३॥

शान्त चित्त वशीभूत मन वाला शास्त्रोक विधी से आये हुए उक्त शिष्य के लिए वह विद्वान् आचार्य भले प्रकार जिस विद्या से वह अविनाशी और अविकारी पुरुष जाना

जाता है उस ब्रह्म विद्या को यथार्थ रीति से उपदेश करे।

इति प्रथम मुण्डके द्वितीयः खण्डः।

अथ द्वितीय मुण्डके प्रथमः खण्डः।

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः। तथाक्षरात् विविधाः सोम्य! भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥१॥

वह पूर्वोक्त अक्षर ब्रह्म सत्य है जैसे प्रदीप्त हुई अग्नि से उस के समान रूप वाले सहस्रों विस्फुलिङ्ग (चिङ्गारे) उत्पन्न होते हैं वैसे ही हे सोम्य अक्षर ब्रह्म से बहुत प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं और उस ही में लय हो जाते हैं ॥ १ ॥

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥ २ ॥

निश्चय से दीप्ति वाला है, अमूर्त है, सर्वव्यापक है वह बाहर और प्रत्येक पदार्थ के मध्य में है, जिस लिये निश्चय करके उत्पत्ति से रहित है, इस लिए प्राणों से रहित है, मन से रहित है अतः प्रकाश स्वरूप है, पर अक्षर प्रकृति से भी परे है ॥ २॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३ ॥

उस ब्रह्म से प्राण मन सब इन्द्रिय और उन के विषय

आकाश वायु अग्नि जल विश्व के धारण करने वाली पृथिवी उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ ॥

इस ब्रह्म का अग्नि मुख है चन्द्रमा और सूर्य चक्षु हैं, दिशायें श्रोत्र हैं ऋगादिवेद उस की वाणी हैं और सब ब्रह्माण्ड गत वायु प्राण है सब संसार (जगत) हृदय-स्थानीय है, पृथिवी पादस्थानीय है निश्चय करके यह सब भूतों का अन्तरात्मा है ॥ ४ ॥

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्य्यः सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम् । पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात्संप्रसूताः ॥ ५ ॥

उस पर ब्रह्म से द्युलोकरूप बादल उत्पन्न होते हैं जिस का सूर्य काष्ठादि इन्धन स्थानीय है उस सूर्य रूप अग्नि से मेघ रूप बादल उत्पन्न होते हैं उस से पृथिवी में अन्नादि औषधियें उत्पन्न होती हैं उन से वीर्य और वीर्य को पुरुष स्त्री में सींचता है उस से नाना प्रकार की प्रजा पुरुष से उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥

तस्मादृचः साम यजूंष्यपि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च । संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्य्यः ॥ ६ ॥

उस पूर्ण ब्रह्म से ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद उपनयनादि संस्कार और सब अग्नि होत्रादि यज्ञरूप कर्म अश्वमेधादि सब यज्ञ उक्त यज्ञों में दान और मुहूर्तादि सब काल और यज्ञ कर्ता यजमान और सब इन्द्रियों के गोलक जहां पर चन्द्रमा पवित्र प्रकाश करता है, जहां सूर्य प्रकाश करता है वह सर्व लोक उत्पन्न हुए ॥६॥

तस्माच्च देवा बहुधा संप्रसूताःसाध्या मनुष्याः पशवो वयाꣳसि । प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्य्यं विधिश्च ॥ ७ ॥

उस अविनाशी परब्रह्म से नाना प्रकार के देवता (द्विगुण वाले पुरुष) रजो गुण सम्पन्न सिद्धि की इच्छा वाले देव विशेष साधारण पुरुष और पशु पक्षी प्राण और अपान धान्य और यव और तप गुरु वचन में पूर्ण विश्वास सत्य भाषण इन्द्रिय संयमपूर्वक वेद का स्वाध्याय और विधि यह सब उस परम पिता परमानन्द से उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः सप्त समिधः सप्त होमाः । सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥ ८ ॥

सात प्राण सप्त उन की वृत्तियें सात विषय सप्त ही उन के होम और यह सप्त लोक जिन में जीव आते जाते हैं वह जीव कैसे हैं जो इस शरीर रूप गुहा में शयन करते हैं यह सब उसी परब्रह्म से उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वे-रूपाः । अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥ ९ ॥

उस परम देव परमात्मा से समुद्र और सकल पर्वत उत्पन्न होते हैं, उसी से सब तरह की नदियां बहता हैं और उसी से सकल औषधियें सर्व भाँन्ति के रस उत्पन्न होते हैं जिस से यह भूतों से स्थिर होता है इसी कारण से यह सब का अन्तरात्मा है ॥ ९ ॥

पुरुष एवेद विश्व कर्म तपो ब्रह्म परामृतम ॥ एतद्योवेद निहितं गुहायांसोऽविद्याग्रन्थि विकिरतीहसोम्य ॥१०॥

उस अन्तरात्मा पुरुष में निश्चय करके यह सब जगत् जो शुभा शुभकर्म तितिक्षा ब्रह्म" वेद परमामृत का समुदाय है स्थिर है । ह सोम्य जो पुरुष इस को जानता है वह यहीं आविद्यक ग्रन्थि को विनाश कर देता है ॥ १० ॥

इति द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ।

अथ द्वितीय मूण्डके द्वितीय खण्डः ।

आविः संनिहितं गुहाचरन्नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम्।
एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परंविज्ञानाद्यद्वरिष्ठं
प्रजानाम् ॥ १ ॥

वह प्रकाश स्वरूप ब्रह्म सब में व्यापक इस ब्रह्माण्ड रूप गुहा में गति करने वाला प्रसिद्ध है वह सब से महान् और सब का स्थिति स्थान है। जिस में चलने वाले, गति करने वाले प्राणी निमेष क्रिया करने वाले और अनिमेष वाले भी यह सब स्थित हैं जो स्थूलसूक्ष्म सत् असत् सब पदार्थों में ग्रहण करने योग्य सबसे श्रेष्ठ प्रजा के विज्ञान से परे हैं उस विज्ञानात्मा पुरुष को तुम जानो ॥ १ ॥

यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणुयास्मिंल्लोका निहिता लोकिनश्च ।
तदेतदक्षरं ब्रह्म सप्राणस्तदु वांमनः ॥ तदेतत्सत्यं तदमृतं
तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ॥ २ ॥

जो ब्रह्म दीप्तिवाला है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म है जिस में सम्पूर्ण लोक और उन में निवास करने वाले जीव स्थित हैं वह यह अक्षर ईश है वह सब को प्राणन शक्ति देने वाला है और वही वाणी तथा मन का प्रेरक है वह यह सत्य है वह मृत्यु से रहित है वह जानने योग्य है अतः हे सोम्य तू उस को जान ॥ २ ॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं संधयीत
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य

विद्धि ॥ ३ ॥

उपनिषद् सम्बन्धि महास्त्र धनुष को धारण कर निश्चय करके उस में उपासना रूप तीक्ष्ण बाण को लगा और ईश गत भाव वाले चित्त से प्राणायाम द्वारा खींच कर उसी अक्षर रूप लक्ष्य को हे शिष्य वेधन कर अर्थात जान ॥३॥

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ४ ॥

ओंकार धनुष है निश्चय करके आत्मा बाण और उसका लक्ष्य ईश है प्रमाद रहित चित्त से उस का वेधन करे बाण के सदृश तन्मय हो जाय ॥ ४ ॥

अस्मिन द्यौःपृथिवी चान्तरिक्षमोतंमनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ॥ ५ ॥

जिस अक्षर रूप ईश में द्युलोक पृथिवी और अन्तरिक्ष और सब इन्द्रियों के साथ मन आत प्रोत है निश्चय करके उस एक आत्मा को जानो उस से भिन्न अन्य वाणियों को छोड़ दो क्योंकि यही आत्मा मोक्ष का 'सेतु' पुल है ॥ ५ ॥

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः । स एषोऽन्तश्चरते बहुधाजायमानः॥ ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः परायं तमसः परस्तात् ॥ ६ ॥

रथ नाभि में अरों के समान जिस में नाडियें ओत प्रोत

हैं और जहां वह परमात्मा बहुत प्रकार से आविर्भाव को प्राप्त हुआ भीतर विचरता है उस आत्मा का "ओ३म्" इस परम-पद वाचक पद से ध्यान करो जो अन्धकार से परे है उस की प्राप्ति के लिये तुम को आशीर्वाद हो ॥ ६ ॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि, दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः । मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ॥ तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाती ॥ ७ ॥

जो सर्वज्ञ सब के जानने वाला है जिस की संसार में यह महिमा है निश्चय कर के यह आत्मा हृदय पुण्डरीक रूप दिव्य आकाश में प्रतिष्ठित है ज्ञान स्वरूप है प्राण और शरीर का नेता है इस पार्थिक जगत् में प्रत्येक प्राणी के हृदय को आश्रय करके प्रतिष्ठित है उस के विज्ञान से धीर पुरुष आनन्द रूप अमृत को जो प्रकाशमान् है ज्ञान दृष्टि से देखते हैं ॥ ७ ॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ८ ॥

उस परावर ब्रह्म के जानने पर हृदय की आविद्यक ग्रन्थि भेदन होजाती है सर्व संशय नष्ट होजाते हैं और उसके कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं ॥८॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् । तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ ९ ॥

उस ज्योतिमय हृदय कोष तमोगुण से रहित निरवयव

ब्रह्म विराजमान है वह शुद्ध है सूर्य चन्द्रादि ज्योतियों का भी ज्योति अर्थात् प्रकाशक है। वह जो है उस को आत्मवेत्ता जानते हैं अन्य कोई नहीं ॥ ९ ॥

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १० ॥

उस ब्रह्म में सूर्य प्रकाश नहीं करता चन्द्रमा और तारागण भी प्रकाश नहीं करते न यह बिजलियें उसको प्रकाश करती हैं यह भौतिकाग्नि कहां प्रकाश कर सकाहै, उसही स्वयं प्रकाश के पीछे सब प्रकाशित होते हैं उसी के प्रकाश से सब तेजो मण्डल प्रकाशित होता है, स्वयं नहीं ॥ १० ॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ ११ ॥

पूर्वोक्त यह अमृत रूप ईश ही है पहले ईश था अन्त में ईश ही शेष रहेगा दक्षिण की ओर और उत्तर की ओर नीचे और ऊपर भी यह ही विस्तृत अर्थात् फैला हुआ है यह विश्व अति श्रेष्ठ ईश ही है ॥ ११ ॥

इति द्वितीय मुण्डके द्वितीयः खण्डः ।

अथ तृतिय मुण्डके प्रथमः खंडः

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व-
जाते ॥ तयो रन्यः पिप्पलं स्वद्वत्यनश्नन्न
न्योऽभिचाक शीति ॥१॥

(द्वा) दो (सुपर्णा) पक्षी (सयुजा) साथ मिले हुए (सखाया) मित्र से हैं और (समान) अपने समान (वृक्ष) वृक्ष को (परिषस्व जाते) सब ओर से आश्रय किए हुए हैं तयोः) उन दोनों में से (अन्यः) एक तो (पिप्पलं) फल को (स्वादु) स्वादु मान कर (अत्ति) खाता है और (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) साक्षी मात्र है ॥ १ ॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो ऽनीशया शोचति मु-
ह्यमनाः ॥ जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महि-
मानमिति वीतशोकः ॥ २ ॥

प्रकृति माया रूप वृक्ष में, पुरुष अज्ञान से निमग्न है, प्रकृति की अवर्णात्मक शक्ति से मोह को पाया हुआ २ शोक करता है जब योगी सद्गुरुओं से युक्त ईश्वर को अपने से भिन्न देखता है और इस की महिमा को देखता है तब शोक से मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं
ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरं-

जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥

जब उपासक स्वयं प्रकाशक विश्व के कर्ता सर्व शक्तिसम्पन्न सर्वोपरि ईश को देखता है तब वह ईशवेत्ता पुरुष पुण्य और पाप को दूर करके 'निरंजन' ईशको मिलता है ॥ ३ ॥

प्राणो ह्येष यः सर्वं भूतैर्विभाति विजानन् विद्वान्भवते नातिवादी । आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ ४ ॥

निश्चय करके यह जीव रूप है जो सब भूतों से सुशोभित अर्थात् दीखता है उस को जानता हुवा विद्वान पुरुष मिथ्या बोलने वाला नहीं होता ऐसा पुरुष आत्मा में क्रीड़ा करने वाला आत्मा में राग वाला आत्म विषयक अनुष्ठान वाला होता है और ईशवेत्ताओं में श्रेष्ठ कहा जाता है ॥ ४ ॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् । अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५ ॥

इस शरीर के मध्य में प्रकाश स्वरूप शुद्ध यह आत्मा निश्चय करके सत्य से यथार्थ ज्ञान से ब्रह्मचर्य रूप तप से सर्वदा प्राप्त होता है उसको निश्चय करके जिन के अविद्यादि दोष क्षीण होगये हैं ऐसे साधन सम्पन्न यति पुरुष उनको देखते हैं ॥ ५ ॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देव-
यानः । येन क्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्स
त्यस्य परमं निधानम् ॥ ६ ॥

सत्य ही का विजय होता है असत्य की नहीं सत्य ही से ज्ञानरूपी मार्ग विस्तृत होता है जिस मार्ग से आप्तकाम नाओं वाले ऋषिलोग निश्चय करके आक्रमण करते हैं जहां पर वह सत्य का उत्कृष्ट स्थान है ॥ ६ ॥

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं वि-
भाति । दूराद्दूरे तदिहान्तिके च पश्यत्सु हैव
निहितं गुहायाम् ॥ ७ ॥

वह ब्रह्म बड़ा है और प्रकाश स्वरूप है उस का स्वरूप चिन्तन नहीं किया जासक्ता वह सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म है दीप्तिमान् है वह दूर से भी दूर और अन्तःकरण में समीप है ज्ञान दृष्टि से देखने वालों के लिये यहां ही अन्तःकरण रूपी गुहा में विराजमान है ॥ ७ ॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा-
कर्मणा वा । ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु तं
पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ८ ॥

वह ब्रह्म चक्षुओं से ग्रहण नहीं किया जासक्ता, न वाणी से ग्रहण किया जासक्ता है न और इन्द्रियों से न तितिक्षा से और न कर्मों से किन्तु ज्ञान के महत्व से अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा

वह ध्यान करने वाला पुरुष उस निरवयव ब्रह्म को देखता है ॥ ८ ॥

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणः पञ्चधा संविवेश । प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन्विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥ ९ ॥

ध्यान करने वाला आत्मा अणु है इस बात को जिज्ञासु अपने अनुभव से स्वयं जानता है जिस आत्मा में पञ्च प्रकार का प्राण स्थिर है जिस विशुद्ध ब्रह्म में यह विराजमान होता है उसी में सम्पूर्ण प्रजाओं का इन्द्रियों के साथ चित्त ओत प्रोत है ॥ ९ ॥

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान् । तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥ १० ॥

निर्मल अन्तःकरण वाला मुक्त पुरुष जिस जिस अवस्थाका आत्मभूत सामर्थ्य से चिन्तन करता है और जिन २ कामों को कामना करता है उन उन अवस्थाओं को और उन २ कामनाओं को प्राप्त होता है इसलिये निश्चय करके मुक्ति रूप विभूति चाहने वाला आत्मा को जानने वाले मुक्त पुरुष को गुरुभाव से पूजा करे ॥ १० ॥

इति तृतीय मुण्डके प्रथमः खण्डः ॥

अथ तृतीय मुण्डके द्वितीयः खण्डः प्रारभ्यते ।

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ॥ उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ॥ १ ॥

वह मुमुक्षु इस सर्वोपरि सब के आश्रय भूत ब्रह्म को जानता है जिस ब्रह्म में सकल ब्रह्माण्ड स्थिर है और जो शुद्ध प्रकाश स्वरूप है निश्चय करके जो निष्कामी उस पूर्ण पुरुष की उपासना करते हैं वे धीर पुरुष इस जन्म मरण को उल्लङ्घन कर जाते हैं ॥ १ ॥

कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र॥ पर्याप्त कामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २ ॥

जो पुरुष सकाम कर्मों को श्रेष्ठ मानता हुवा कामना करता है वह उन कामनाओं के अनुसार जहां जहां उत्पन्न होता है, और जिस की सब कामनायें पूर्ण होगई हैं जिसने अपने मन को वशीभूत कर लिया है, ऐसे पुरुष की सब कामनायें इस जन्म में ही नाश को प्राप्त हो जाती हैं ॥ २ ॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥ ३ ॥

यह आत्मा केवल वेदाध्ययन से नहीं मिलता न बुद्धि से न बहुत शास्त्रों के श्रवण करने से प्राप्त होता है किन्तु

जिस मुमुक्षु पुरुष को ही यह आत्मा योग्य समझता है उसी को मिलता है और उसीको यह आत्मा अपने आनन्द स्वरूप को दर्शाता है ॥ ३ ॥

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात् । एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्त-स्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ॥ ४ ॥

यह आत्मा आत्मिक बल रहित पुरुष को नहीं प्राप्त होता और विषयासक्ति रूप प्रमाद से अथवा त्याग रहित त. पसे भी नहीं प्राप्त होता आत्मिक बल प्रमाद रहित चित्त तथा त्याग सहित तप, इत्यादि उपायों से जो विद्वान पुरुष यत्न करता है उस को यह आत्मा ब्रह्म धाम ब्रह्म स्वरूप में प्रवेश करता है ॥ ४ ॥

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः । ते सर्वग सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मा नः सर्वमेवाविशन्ति ॥ ५ ॥

इस को ऋषि लोग प्राप्त होकर ज्ञान तृप्त हुए यशो कृत मन वाले रागादि दोषों से विरक्त शान्त चित्त वाले हो जाते हैं वे धीर समाहित चित्त होकर सर्वगत ब्रह्म को सब ओर से प्राप्त हुए सब ही में निवास करते हैं ॥ ५ ॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः

परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ६ ॥

वेदान्त विज्ञान द्वारा संशय से रहित यति लोग जिनका कर्मयोग और ज्ञान से अन्तःकरण शुद्ध होगया है वह सब परान्त काल तक ब्रह्मलोक में जीवन्मोक्ष हुए हुए पुनः संसार में नहीं आते हैं ॥ ६ ॥

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एक भवन्ति ॥ ७ ॥

प्राणादि पञ्चदश कलायें मुक्त अवस्था में अपने कारण में लय हो जाती हैं और चक्षुरादि सब इन्द्रियें अपने अपने कारण में लय होजाते हैं कर्मेन्द्रिय और विज्ञानमय आत्मा यह सब परब्रह्म में एक हो जाते हैं ॥ ७ ॥

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८ ॥

जिस प्रकार नदियें बहती हुई समुद्र में नाम और रूप को छोड़ कर लयता को प्राप्त होजाती हैं इसी प्रकार विद्वान् पुरुष नाम और रूप से विमुक्त हुआ परे से परे जो ब्रह्म है उस दिव्यस्वरूप पुरुष को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्य ब्रह्मवित्कुले भवति । तरति शोकं तरति

पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥९॥

निश्चय करके जो उस सर्वोपरि ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म ही हो जाता है इसके कुल में ब्रह्म का न जानने वाला नहीं होता और वह शोक को तर जाता है, और अन्तःकरण की आविद्यक ग्रन्थियों से मुक्त होकर अमृत होजाता है ॥ ९ ॥

तदेतदृचाभ्युक्तं क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः।
स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः, तेषामेवैतां ब्रह्म
विद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् ॥१०॥

जो वह पूर्वोक्त ऋचाने कथन किया है कि निष्कामी पुरुष वेद वेत्ता ब्रह्म का उपासक श्रद्धा वाला आप एक ब्रह्म की उपासना करने वाला और जिस ने शिरो व्रत का विधि पूर्वक धारण किया है उस को ही उक्त 'ब्रह्मविद्या' का उपदेश करे ॥ १० ॥

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽ-
धीते नमः परम ऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ११

यह बात सत्य है कि प्रथम अङ्गिरा ऋषि ने कहा कि इस ब्रह्म ज्ञान को खण्डित व्रत वाला नहीं पासक्ता ब्रह्मविद्या के प्रवर्त्तक ऋषियों को हमारा नमस्कार हो नमस्कार हो ॥११॥

इति तृतीय मुण्डके द्वितीयः खण्डः

ओं भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। भद्रं पश्येमा-

क्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्य-
शेमहि देवहितं यदायुः ॥ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध-
श्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ॥ स्वस्ति नस्ता-
र्क्ष्यो अरिष्टनेमिः ॥ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

इति मुण्डकोपनिषत् समाप्ता ।

शिव संकल्प सूक्त ।

ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥१॥

जो दूय् तमान् प्रकाशात्मक देव जागते पुरुष का दूर से दूर चला जाता है, जो सोते हुवे पुरुष का इसी प्रकार से आता जाता है, जो सुषुप्त पुरुष का फिर आगमन करता है, जो अतीत विप्रकृष्ट और अनागत का ग्रहण करने वाला और जो ज्योति का भी ज्योति है, वह मेरा मन शुद्ध सङ्कल्पवान हो ॥ १ ॥

ओं येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यद पूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२॥

कर्मानुष्ठान में तत्पर बुद्धि सम्पन्न मेधावी यज्ञ में जिस मन से उत्तम कर्मों को करते हैं जो प्राणी मात्र के गात्र में स्थित है, जो सब से प्रथम पूजनीय भाव से स्थित है, वह मेरा मन शुद्ध सङ्कल्पवान हो ॥ २ ॥

ओं यत्प्रज्ञानमुतचेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।

जो प्रज्ञान, चित्त, और धैर्यरूप है, जो प्राणी मात्र का अन्तर आत्म स्वरूप अविनाशी ज्योति है, जिस के बिना कोई

भी कर्म नहीं होता, वह मेरा मन शुद्ध संकल्पवान् हो ॥ ३ ॥

ओं येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥४॥

जिस अविनाशी मन ने यह सब भूत, वर्त्तमान, भविष्यत् को ग्रहण किया है, जिस के द्वारा सात होता यज्ञ का विस्तार करते हैं । वह मेरा मन शुद्ध संकल्पवान् हो ॥ ४ ॥

ओं यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथना भाविवाराः । यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव. संकल्पमस्तु ॥५॥

जिस में ऋक् साम, यजु इस प्रकार स्थित हैं जिस प्रकार रथ की नाभि में अरे; जिस में प्राणी मात्र का ज्ञान, पट में तन्तु सम ओत प्रोत है, वह मेरा मन शुद्ध संकल्पवान हो ॥ ५ ॥

ओं सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव । हृत्प्रतिष्ठं यद जिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥६॥

जैसे अच्छा सारथी लगाम द्वारा घोड़ों को चलाता है वैसे ही जो मनुष्यों को प्रेरणा करता है, जो कदापि जीर्ण नहीं होता और जो वेगवान् पदार्थों से भी अधिक वेगवान् है वह मेरा मन शुद्ध संकल्पवान हो ॥ ६ ॥

यजु० अ० ३४ मं १-६

इति शिव संकल्प सूक्त ।

हिरण्यगर्भ सूक्त ।

ओं हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पति रेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

जो हिरण्यगर्भ इस प्रपञ्च की उत्पत्ति से पूर्व विद्यमान था और जो उत्पन्न होकर भी सब विकार जात ब्रह्माण्ड का ईश्वर था वह इस विस्तीर्ण पृथिवी को और आकाश को धारण करता है ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ १ ॥

ओं य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

जो आत्मा का तथा बल का दाता है, जिस की प्रबल आज्ञा को सब देवता पालन करते हैं, जिस की छाया अमृत और मृत्यु हैं ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ २ ॥

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजाजगतो बभूव । य ईशे अस्यद्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

जो स्थावर जगम मात्र का अपने महात्म्य से एक अद्वितीय ईश्वर है, जो इस द्विपद तथा चतुष्पद वर्ग का शासन करने वाला है ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ३ ॥

ओं यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्ररंरसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

जिस परमात्मा की महिमा को यह हिमालयादि पर्वत प्रख्यात करते हैं, जिस की महिमा को नदियों सहित यह समुद्र वर्णन कर रहे हैं, जिस के बाहु रूप से यह दिशायें स्थित हैं, ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ४ ॥

ओं येनद्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा ये न स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

जिस परमात्मा ने अन्तरिक्ष और पृथिवी को स्थिर कर रक्खा है जिस ने स्वर्ग को अपने स्थान पर और सूर्य को आकाश में नियत किया है । जो आकाश में जल का उत्पन्न करने वाला है, ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ५ ॥

ओं यं क्रन्दसी अवसातस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

जिस परमात्मा को आकाश और पृथिवी अपना निर्माण कर्त्ता देखते हैं, जिस की महिमा को अपनी बुद्धि से यह देदीप्यमान आकाश और पृथिवी विचार रहे हैं, जिस परमात्मा की सत्ता से यह सूर्य उदय हो कर जगत का प्रकाशित करता है, ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ६ ॥

ओं आपो ह यद्बृहतीर्विश्व मायन्गर्भं दधानाजनयन्तीरग्निम
ततो देवानां समवर्तता सुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

जिस गर्भ को धारण करते हुए यह विश्वात्मक जल स्थित थे, और जिस से यह पंच भूतात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई है, जो विश्वात्मक प्रजापति देवादिकों का प्राणात्मक वायु है ऐसे सुख स्वरूप भगवान् की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ७ ॥

ओं यश्चिदापो महिनापर्य पश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम ।
यो देवेष्वधिदेव एक आसीत कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

जो प्रजापति प्रलय काल में अपने माहत्म्य से जल को देखता था, जो जल इस यज्ञोपलक्षित विकार जात को पैदा करते हैं, जो उस जगत की उत्पत्ति के निमित्त प्रजापति को धारण करते हैं, जो प्रजापति सब देवताओं का ईश्वर है, ऐसे सुख स्वरूप भगवान की हवि द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ८ ॥

ओं मानो हिंसीज्जनितायः पृथिव्यायो वा दिवं सत्य धर्मा जजान। यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥

जो सत्य धर्म युक्त पृथिवी तथा अन्तरिक्षादि का पैदा करने वाला है, जिस ने इन आनन्द दायक महान जलों को पैदा किया है, वह हमारा नाश न करे, ऐसे सुख स्वरूप भगवान की हवि अर्पण से हम परिचर्या करें ॥ ९ ॥

ओं प्रजापतेनत्वदेता न्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयस्यामपतयो रयीणाम् ॥१०॥

हे प्रजापते परमात्मन् तुम्हारे सिवाय और कोई इन सब लोकों को उत्पन्न कर के धारण करने में समर्थ नहीं है, इस फल की कामना से हम आप को हवि अर्पण करते हैं वह हमको मिले और हम धन के स्वामी होंय ॥ १० ॥

इति हिरण्यगर्भ सूक्त ।

ऋक् ० अ० ७ व० ५ मं० १० अ० १० ॥

पुरुष सूक्त ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

परमात्मा अनन्त शिरों अनन्त नेत्रों अनन्त चरणों से युक्त है वह पुरुष सकल ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके दश अंगुल बाहर स्थित हुवा ॥ १ ॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

यह सब भूत वर्त्तमान तथा भविष्यत् जगत् पुरुष ही है। यही देवत्व का स्वामी है जिसकारण से वह प्राणियों के फल रूप निमित्त से अपनी कारण अवस्था को त्याग कर परिदृश्य

मान जगदवस्था को प्राप्त होता है ॥१॥

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

यह जो कुछ अतीत अनागत तथा वर्तमान जगत है वह सब इस परमेश्वर की महिमा मात्र है । वह उस से बहुत अधिक है, सब भूत मात्र उस परमात्मा के एक पाद हैं शेष तीनों पाद दीप्यमान चैतन्य रूप में स्थित हैं ॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

यह त्रिपात् बहु रूप पुरुष संसार के गुण दोषों से रहित अपनी उच्चता से स्थित है इस तरह स्थित पुरुष का एक पाद सृष्टि संहार रूप आविर्भाव तिरोभाव को प्राप्त होता है उससे वह माया में आकर देव तिर्यगादि नाना रूप से अनेक स्थावर जंगम अखिल दृश्यित जगत हो व्याप्त होता है ॥४॥

तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ॥५॥

इस आदि पुरुष से जगत् रूपी विराट उत्पन्न हुआ उसी देह को अपना अधिकरण करके वह परमात्मा जो सब वेदान्त शास्त्र का वेद्य है जीव रूप से उस में प्रविष्ट हुआ यह पुरुष इस तरह पैदा हो कर देव तिर्यक मनुष्यादि रूप हुआ और उस ने पृथिवी को और उस के पश्चात् देवादि शरीरों को रचा ॥ ५ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासादाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६॥

जिस समय देवताओं ने बाह्य द्रव्य के अभाव में पुरुष को ही हविद्वारा संकल्प करके मानस याग का विस्तार किया उस समय उस यज्ञ में वसन्त ऋतु की घृत रूप से ग्रीष्म ऋतु को समिध रूप से और शरद ऋतु को हवि रूप से कल्पना की गई ॥ ६ ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ७ ॥

उस यज्ञ साधन भूत पुरुष का जो सृष्टि के पहले पुरुष रूप से पैदा हुआ था मानस यज्ञ में प्रोक्षणादि संस्कार किया और उसी पुरुष से देवता सृष्टि साधन योग्य प्रजापति और ऋषियों ने मानस याग सम्पादन किया ॥ ७ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशूंतांश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥ ८ ॥

उस सर्वात्मा पुरुष रूप यज्ञ से दधि मिश्रित घृत अर्थात भौष्य वस्तु पैदा हुई, और उस पुरुष ने उन वायु देवता वाले आरण्यचारी और ग्राम चारी पशुओं को पैदा किया ॥८

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ९ ॥

उस सर्वात्मा यज्ञ पुरुष से ऋक साम पैदा हुये उसी से छन्द अर्थात गायत्र्यादि पैदा हुये उस से यजुर्वेद पैदा हुआ ॥ ९ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ १० ॥

उस सर्वात्मा यज्ञ पुरुष से घोड़े पैदा हुए और यह जो ऊपर नीचे के दांतों से युक्त हैं वे पैदा हुये उसी से गाय पैदा हुई उसी से भेड़ बकरियां पैदा हुईं ॥ १० ॥

यत्पुरुषंव्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत्कि-
म्बाहूकिमूरूपादाऽउच्येते ॥ ११ ॥

जिस समय वेधा के जीव रूप देवताओं नेविराट रूप पुरुष को संकल्प से पैदा किया तिस समय किस तरह से कल्पनाकी–उस पुरुष का मुख कौन हुआ कौन बाहू कौन जंघा कौन पाद हुये ॥११॥

ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्बाहूराजन्यःकृतः । ऊरूतदस्ययद्-
वैश्यःपद्भ्याꣳशूद्रोऽअजायत ॥ १२ ॥

ब्राह्मण इस पुरुष का मुख और क्षत्रिय बाहू रूप से पैदा हुये उस वेधा की जो यह जंघा हैं–वह वैश्य हुये चरणों से शूद्र पैदा हुये ॥१२॥

चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत । श्रोत्राद्वायुश्च-
प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १३ ॥

चन्द्रमा मन से पैदा हुआ नेत्रों से सूर्य पैदा हुआ मुख से अग्नि तथा इन्द्र और प्राणसे वायु पैदा हुआ ॥१३॥

नाभ्याआसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णोद्यौः समवर्त्तत पद्भ्यांभूमि-

दिशश्रोत्रात्तथाल्लोकां अकल्पयन ॥ १४ ॥

वेत्रा भगवान की नाभी से अन्तरिक्ष हुआ शिर से सवर्ग पैदा हुवा चरणों से भूमि श्रोत्र से दिशा उत्पन्न हुई इसी तरह भूरादि लाकों का कल्पना की ॥१४॥

सप्तास्यासन्परिधयास्त्रिः सप्तसमिधः कृताः देवायद्यज्ञन्तवा ना अबध्नन्पुरुषम्पशुम् ॥१५॥

जिस समय की देवताओं ने मानस यज्ञ का विस्तार करते हुये पुरुष को पशु रूप से भावित कर के बांधा उस समय पर संकल्पित उस यज्ञ की गायत्र्यादि सात छन्द परिधि हुई और २१ समिध हई ॥ १५ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन । तेह-नाकम्महिमानः सचन्तयत्र पूर्वेसाद्धयाः सन्ति देवाः ॥१६॥

इस प्रकार प्रजापति के प्राण रूप देवताओं ने मानस यज्ञ द्वारा प्रजापति रूप यज्ञ को पूजा की उस पूजा से वह जगत् के धारण करने वाले मुख्य धर्म हुये जिस विराट प्राप्ति रूप स्वर्ग में पुरातन देवता स्थित रहते हैं उस विराट प्राप्ति रूप स्वर्ग को हो वह उपासक महात्मा प्राप्त होते हैं । ॥१६॥

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यैरसाच्चविश्वकर्म्मणः समवर्त्तताग्रे । तस्यत्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्यदेवत्त्व माजानमग्रे ॥१७

पृथ्वी और जलों से (अर्थात पंच भूतों से जो रस पुष्ट हुआ और जिस का विश्व कर्म है उस काल की प्रीति का

रस सब से पहले हुआ उस रस को रूप धारण करता हुआ आदित्य प्रति दिन प्राप्त होता है प्रथम मनुष्य रूप उस पुरुष मेध याजी के सूर्य्य रूप से मुख्य उस देवत्व को प्राप्त करता है ॥ १७ ॥

वेदाहमेतंपुरुषम्महान्तमादित्यवर्णन्तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेतिनान्यःपन्थाविद्यतेयनाय ॥१८॥

मैं इस महान आदित्य स्वरूप (अन्धकार से परे) परमात्मा पुरुष को जानता हूं उसी को जान कर मृत्यु का लंघ जाता है (अर्थात् मुक्तिपाता है) और कोई मार्ग कल्याण का नहीं है ॥ १८ ॥

प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तरजायमानो बहुधाविजायते ।
तस्ययोनिपरि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्हतस्थुभुवनानिविश्वा ॥

प्रजापति परमात्मा गर्भ में प्रविष्ट होता है, जन्म रहित होने पर भी बहुरूप से उत्पन्न होता है-उस परमात्मा के स्वरूप को ब्रह्म ज्ञानी साक्षात्कार करते हैं - उसी में सब लोक स्थित हैं ॥ १९ ॥

योदेवेभ्यआतपतियोदेवानां पुरोहितः । पूर्वो योदेवेभ्यो जातो नमोरुचायब्राह्मये ॥ २० ॥

जो प्रजापति परमात्मा देवताओं के निमित्त सब ओर से प्रकाशित होता है-जो देवताओं का भी पूज्य है जो देवताओं से पहिले प्रकट हुआ- उस देदीप्यमान ब्रह्म को नमस्कार है ॥२०॥

रुचम्ब्राह्मञ्जनयन्तो देवाऽअग्रेतदब्रुवन् । यस्त्वैवं ब्राह्मणो-

विद्यात्तस्यदेवाऽअसन्वशे ॥ २१ ॥

इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं ने प्रकाश स्वरूप ब्रह्म को प्रकट करते हुये उसके सन्मुख यह वाणी कही—जो ब्राह्मण तुम को उक्त प्रकार से जानता है—उस के वश में देवता होते हैं ॥२१॥

श्रीश्चतेलक्ष्मीश्चपत्न्या वहोरात्रेपार्श्वे नक्षत्राणिरूपमाश्विनौव्यात्तम। इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकम्मऽइषाण २२

यजु० अ० ३१ मं० १—२२

हे परमात्मन् श्री और लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी स्वरूप रात्री दिवस पार्श्वस्वरूप नक्षत्र आप का रूप, पृथ्वी आकाश मुख स्थानीय हैं, कर्म फल की इच्छा करते हुये इच्छा करो। मेरे निमित्त उस लोक की इच्छा करो कि मैं सर्व लोक की इच्छा करूं (सर्वात्मक हो जाऊं) ॥ २२ ॥

इति पुरुष सूक्त ।

सार्व मेधिक मंत्राणि ।

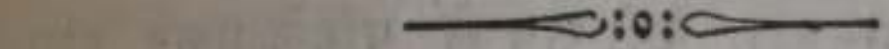

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तच्चन्द्रमाः तदेव शुक्रन्तद्ब्रह्म. ताऽआपः सप्रजापतिः ॥ १ ॥

वह भगवान ही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है वही चन्द्रमा है, वही शुद्ध ईश है, वही जल है, वही प्रजापति है ॥ १ ॥

सर्व्वेनिमेषाज्जज्ञिरेविद्युतः पुरुषादधि । नैनमूर्द्ध्वन्नतिर्य्यञ्चन्नमध्ये परिजग्रभत् ॥ २ ॥

उस प्रकाश स्वरूप पुरुष से सब निमेष पैदा हुये, उस उस पुरुष को न तो ऊपर से न चारों ओर से न मध्य से कोई ग्रहण कर सकता है ॥ २ ॥

नतस्यप्रतिमाऽअस्ति यस्यनाममहद्यशः । हिरण्यगर्भ-इत्येष मामाहिꣳसीदित्येषायस्मान्नजातऽइत्येषः ॥ ३ ॥

उस पुरुष को जिस का नाम महद्यश है, कोई प्रतिमा (उपमा) नहीं है, वही हिरण्यगर्भ है, यह मन्त्र और "वह हम को न मारे" यह मन्त्र और 'जिस से उत्कृष्ट कोई नहीं है' यह मन्त्र यह जिस के प्रतीक हैं ॥ ३ ॥

एषोह देवः प्रदिशोनुसर्व्वाः पूर्व्वोहजातः सऽउगर्भेअन्तः

सऽएवजातः सजनिष्य माणः प्रत्यङ्जना स्तिष्ठति सर्व्वतो मुखः ॥ ४ ॥

यह ही प्रकाश स्वरूप भगवान सब दिशाओं को व्याप्त करके स्थित है, हे मनुष्यो. यही सब से पहिले प्रकट हुआ, गर्भ के मध्य में भी वही स्थित है, होने वाला भी वही है हर एक पदार्थ में गमन करने वाला और सर्वतोमुख वही है ॥४॥

यस्माज्जातन्न पुराकिंचैनवयऽआबभूव भुवनानिव्विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजयासꣳरराणस्त्रीणिज्ज्योतींषि सचतेसषोडशी ।५

जिस से पहिले कुछ भी पैदा नहीं हुआ जो सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त है, वह षोडष अवयव प्रजापति प्रजा द्वारा रमण करता हुआ तीनों जातियों (सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि) का सेवन करता है ॥ ५ ॥

येनद्यौरुग्रा पृथिवीच दृढ़ायेनस्वस्तभितंय्येन नाकः ।
योऽअन्तरिक्षे रजसोव्विमानः कस्मैदेवायहविषाव्विधेम ॥६

इस का अर्थ ऊपर कर दिया गया ॥ ६ ॥

यड्क्रन्दसीऽ अवसातस्तभानेऽअभ्यैक्षेतान्मनसारेजमाने ।
यत्राधिसूरऽउदितोव्विभाति कस्मैदेवायहविषाव्विधेम ॥७

आपोहयद्बृहतीर्य्यश्चक्रदापः ॥

इस का अर्थ हिरण्यगर्भ सूक्त में कर दिया गया है ॥ ७ ॥

व्वेनस्तत्पश्यन्निहितङ्गुहासद्यत्र व्विश्वम्भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदः संचव्विचैति सर्वः सऽओतःप्रोतश्चाव्विभूः

प्रजासु ॥ ८ ॥

ब्रह्मज्ञानी उस ब्रह्म को बुद्धिरूपी गुहा में स्थित नित्य देखता है, जिस में यह विश्व घोंसले में पक्षी की नाईं आश्रित है, उसी में यह सब लय होता है वही विभू सब प्रजा में ओत प्रोत है ॥ ८ ॥

प्रतद्द्वोचे दमृतन्नुव्विद्वान्गन्धर्व्वो धामव्विमृतंगुहासत ।
त्रीणिपदानिनिहितागुहास्य यस्तानिव्वेदसपितुः पितासत् ॥ ९

वेद वेत्ता विद्वान ही शीघ्र इस भगवान के उस अमृत स्वरूप को जो हृदय रूपी गुहा में स्थित है, सर्ग स्थिति प्रलय रूप से वर्णन करें उस के तीन पाद (सर्ग स्थिति प्रलय) बुद्धि-रूपी गुहा में स्थित हैं जो उस को जानता है, वह पिता का भी पिता है ॥ ९ ॥

सनोबन्धुर्ज्जनिता सव्विधाताधामानिव्वेद भुवनानिव्विश्वा ।
यत्रदेवाऽअमृतमान शानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ १० ॥

वही भगवान हमारा बन्धु, वही हमारा उत्पन्न करने वाला, वही हमारा धारण करने वाला है, वही सब लोकों को जानता है, जिस भगवान को देवता ज्ञान प्राप्त करके तीसरे स्थान (अर्थात चित्त स्वरूप में आनन्द करते हैं ॥ १० ॥

परीत्यभूतानि परीत्यलोकान्न्परीत्यसर्व्वाः प्रदिशोदिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजमृतस्यात्तमनात्कमान मभिसंव्विवेश ॥ ११

विद्वान् सम्पूर्ण भूतों को ब्रह्म रूप जान कर सब लोकों को ब्रह्म रूप जान कर, सम्पूर्ण दिशाओं विदिशाओं के ब्रह्मरूप

जान कर प्रथम उत्पन्न हुई वेद वाणी को सेवन करके जीव रूप से यज्ञ के अधिष्ठाता परमात्मा में प्रवेश करता है ॥११॥

परिद्यावापृथिवी सद्यऽइत्वापरिलोकान्परिदिशः परिस्वः । ऋतस्यतंतुर्विततंविचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥ १२

पृथिवी तथा आकाश को शीघ्र ही अपने स्वरूप से व्याप्त करके, लोकों को व्याप्त करके, दिशाओं को व्याप्त कर के, स्वर्ग को व्याप्त करके, यज्ञ तन्तु को विस्तृत अनुष्ठान द्वारा समाप्त करके, उस को देखता है, वही होता है, वही था ॥ १२ ॥

सदसस्पतिमद्भुतंप्रियमिन्द्रस्यकाम्म्यम् सनिम्मेधामयासिषंस्वाहा ॥ १३ ॥

गृह के स्वामी, अद्भुत, इन्द्र के प्रिय मेधा के माँगने वालों को प्रार्थनीय द्रव्य दान तथा मेधा को मांगते हैं, स्वाहा ॥ १३ ॥

याम्मेधांदेवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्यमेधयाग्ने मेधाविनंकुरुस्वाहा ॥ १४ ॥

हे भगवन् जिस बुद्धि की देव गण तथा पितृगण उपासना करते हैं, उस बुद्धि से मुझे सम्पन्न कीजिये, स्वाहा १४

मेधां मे वरुणो ददातुमेधामग्निः प्रजापतिः मेधामिंद्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥

वरुण मुझे बुद्धि प्रदान करे, अग्नि बुद्धि दे, इन्द्र तथा

वायु बुद्धि दे, विधाता मुझे बुद्धि दे, स्वाहा ॥ १५ ॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रञ्चोभे श्रियमश्नुताम् मयि देवा दधातु श्रिय मुत्तमांतस्यंते स्वाहा ॥ १६ ॥

यजु० अ० ३२ मं० १-१६

यह ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जाति मेरी लक्ष्मी को भोगें, मुझे देवता उत्तम श्री दें, तुझ लक्ष्मी को स्वाहा ॥ १६ ॥

इति सावं मेधिक मंत्राणि ।

विष्णु सूक्त ।

अतो देवा अवंतु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त-धामभिः ॥ १ ॥

गायत्र्यादि छन्दों द्वारा परमेश्वर ने इस भू प्रदेश को आक्रमण किया, इस कारण देवता हमारी इस भू प्रदेश के पादों से रक्षा करें ॥ १ ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानिदधेपदं । समूमह्लस्यपांसुरे ॥ २ ॥

विष्णु भगवान ने इस प्रतीयमान जगत को जब आक्र.

मण किया, उस समय तीन प्रकार से अपने चरणों को रखा, पित किया, इन्ही विष्णु भगवान के धूल युक्त चरणों में यह सब जगत अन्तर्गत है ॥ २ ॥

त्रिणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतोधर्माणि धारयन् ॥ ३ ॥

किसी से भी हिंसा किये जाने के अशक्य सब जगत के रक्षा करने वाले विष्णु भगवान इन पृथिवी आदि स्थानों में अग्निहोत्रादि धर्मों को धारण करते हुये तीनों पदों से व्याप्त हुए ॥ ३ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतोव्रतानिपस्पशे । इंद्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥

जिस विष्णु भगवान के अनुग्रह से सब यजमान अग्निहोत्रादि कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, उन विष्णु भगवान के कर्मों को देखो, वह विष्णु इन्द्र के योग्य सखा हैं ॥ ४ ॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यंति सूरयः । दिवीवचक्षुराततम् ॥ ५ ॥

विद्वान जब विष्णु भगवान के उत्कृष्ठ स्थान को शास्त्र दृष्टि से ऐसे देखते हैं जैसे आकाश को चक्षु ॥ ५ ॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिधंते । विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ ६ ॥

ऋग० १, २, ७,

विष्णु भगवान का जो परम पद है उस को विशेष करके स्तुति करने वाले प्रमाद रहित विद्वान प्रकाश करते हैं ॥ ६ ॥

इति विष्णु सूक्त ।

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः । पाहि रीषत उत वाजिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्यः ॥१॥

ऋग्० १, ३६, १५,

हे परमात्मन ! आप दुष्ट पुरुषों से हमें बचावें, और धूर्त, अधर्मी, दुष्टचारी तथा हमारे हनन की इच्छा करने वाले पापियों से हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परा देवेभिरसुरैर्यदस्ति । कं स्विद्गर्भंप्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥ २ ॥

ऋग्० १०, ६, ५,

जो द्युलोक तथा पृथिवी लोक से परे हैं और जो विद्वान तथा असुरों की इन्द्रियों से भी अगोचर है। उस शक्ति ने पहले किस वस्तु को गर्भ रूप से धारण किया ? उस

ने पहले सूक्ष्म वाष्परूप प्रकृति को गर्भ रूप से धारण किया।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः। शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ३ ॥

ऋग्० १०, १३, १,

हे दो शकटो! मैं तुम्हें वेद के साथ जोड़ता हूं, वह इस प्रकार कि तुम्हारे ऊपर सामग्री लाद कर यज्ञ कुण्ड में लेजाई जाय ॥३॥

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति। ये चार्वतो मांस भिक्षामुपासत उतो तेषा मभिगूर्तिर्न इध्वतु ॥४॥

जो लोग घोड़े की परिपक्वावस्था को देखते हुए यह कहते हैं कि यह सुन्दर है, यह युद्ध में शत्रुओं के हनन करने का साधन बने, और जो गतिशील घोड़े से शत्रु के मांस भिक्षा की उपासना करते हैं उन का उद्यम हमको प्राप्त हो ॥४॥

यथा मांसं यथा सुरा यथाक्षा अधिदेवने।
यथा पुंसो विषेणयत स्त्रियां निहन्यते मनः ॥५॥

अथर्व० ६, ७०, १,

हे स्त्रियो! तुम अपने बालक में मद वालोमन को मार शुद्ध भाव से प्रेम करो जिस प्रकार जुआरी जूये में मद्यप मद्य में

और मांसाहारी मांस में कुत्सित प्रेम करते हैं उस भान्ति तुम प्रेम न करो। ५

अमा ते तुम्रं वृषभं पचामि तीव्रं सुतं पंच दशं निषिंचम् ॥ ६ ॥

ऋग्० १०, २७, २,

हे इन्द्र मैं तुम्हारे लिये पुष्टि देने वाली, वीर्य बढ़ाने वाली औषध पकाता हूं। और प्रति दिन एक २ पत्र बढने वाली सोम का रस निकाल कर तुम्हारे लिये बनाता हूं ॥६॥

त्रियच्छता महिषाणामघो मास्त्रो सरांसि मघवा सोम्यापाः ॥ ७ ॥

ऋग्० ५, २९, ८,

हे इन्द्र तू तीन सौ भैंसों का मांस खाजाता है और तीन तालाव भरा हुवा सोम पी जाता है ॥७॥

य आमं मासमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः। गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥८॥

अथर्व० ८, ६, २३,

जो मांस खाते हैं, गर्भ इत्यादि दोष करते हैं उन को यहां से दूर करो ॥८॥

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परि प्रीता पन्यसा वार्येण। भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेषा स्वयं सा मित्रं

वनुते जने चित् ॥ ९ ॥

ऋग्० १०, २७, १२,

कई एक स्त्रियें परमात्मा की स्तुति करती हुईं वरों के साथ विवाही जाती थीं और अन्य जो सद्गुण शील तथा विद्यादि गुणों में उन से ऊंची थीं वह स्वयं अपने मित्र अर्थात् पति को वरती थीं ॥९॥

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमां । यया स-पत्नीं बाधते यया सं विन्दते पतिम् ॥१०

ऋग्० १०, १४५, १,

मैं इस लता रूप औषध को लाभ करता हूं जो अत्यन्त बल युक्त है इससे शत्रु दल की शक्ति को बाध कर अपने न्याय कारी पति को प्राप्त होऊं ॥१०॥

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा । यथा नः सुभगासंसि यथा नः सुफलासंसि ॥११॥

ऋग्० ४, ५७, ६,

हे सीते आप नाना फलों की भोक्ता हो कर सुन्दर फलों वाली हो ॥११॥

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीद-त्पिता नः स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छ-दवरां आविवेश ॥ १२ ॥

जो पुरुष प्रथम रचा किये गये हैं उनको अपनी अपार दयासे ऐश्वर्य की इच्छा करता हुआ परमात्मा अपने से भिन्न जीवों के शरीर रूप कारण संघात को रच कर उस में स्वयं भी प्रविष्ट हुआ ॥१२॥

पूषा सूक्त।

ऋग्० १०, ८१, १,

संपूषन्विदुषा नय यो अंजसानुशासती। यएवेद-मिति ब्रवत ॥ १ ॥

हे पूषन्! आप ऐसे विद्वान् पुरुष के उद्देश से हम को चलावें जो हमें सन्मार्ग बताकर हमारी सब प्रकार की अवनती दूर करके हमको अभ्युदय शाली बनावे ॥ १ ॥

समुपूष्णा गमेमहियो गृहां अभिशासति। इमेए-वेतिच ब्रवत ॥ २ ॥

हेपूषन्! सर्वपोषक परमात्मन्! आप हमें ऐसे शिक्षकों द्वारा शिक्षा करायें जो चारों आश्रमों की विद्या का उपदेश करके हमारे जीवन को उच्च बनावें ॥

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते। नो अस्य व्यथते पविः ॥ ३ ॥

हे पूषन ! आप का दण्ड किसी अवस्था में भी रुक नहीं सकता और आप का कोष, सदैव परिपूर्ण रहता है उस में कभी किसी तरह की न्यूनता नहीं हो सकती ॥ ३ ॥

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते। प्रथमो विन्दते वसु ॥ ४ ॥

जो पुरुष परमात्मपरायण होकर जप तप तथा यज्ञादि कर्म करने वाले और वेदोक्त धर्म पर चलने वाले होते हैं वही सब से प्रथम ऐश्वर्य के स्वामी बनते हैं। ॥४॥

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः। पूषा वाजं सनोतु नः ॥ ५ ॥

हे पूषन् ! आप हमारी सब ज्ञानेन्द्रियों को पवित्र करें, हे सर्वव्यापक ! हमारे विज्ञान की रक्षा करो और वही सर्व-पोषक परमात्मा हमारे यश की रक्षा करे ॥५॥

पूषन्ननु प्रगा इहि यजमानस्य सुन्वतः। अस्माकं स्तुवतामुत ॥ ६ ॥

वह "पूषा" परमात्मा शान्ति शीलादि गुणों के धारण करने वाले पुरुषों का सदैव रक्षक है ॥६ ॥

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे। अथा-

रिष्टाभिरावहि ॥ ७ ॥

उस "पूषा" परमात्मा की कृपा से हमारा ऐश्वर्य कदापि नष्ट न हो और हमारी शिल्पादि सब विद्यायें सदैव उन्नति को प्राप्त हों ॥ ७ ॥

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसं । ईशानं राय ईमहे ॥ ८ ॥

हे पूषन्! आप ऐसी कृपा करें कि हम सदैव अपके अनन्तगुणों का श्रवण करें और उस सर्व पोषक से ही हम ऐश्वर्य की याचना कियाकरें किसी अन्य से नहीं ॥ ८ ॥

पूषन्तव व्रते वय न रिष्येम कदाचन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ९ ॥

हे सर्वपोषक! हम लोग आपके व्रत नियम में ही सदैव चलें, आज्ञाओं को कदापि भंग न करें और सदैव अपके स्तुतिपाठक बने रहें ॥ ९ ॥

परिपूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणं। पुनर्नो नष्टमाजतु ॥ १० ॥

हेसर्व पोषक! आप अपनी सर्वोपरि शक्ति से हमारे ऐश्वर्य्य की सदैव रक्षा करें ॥ १० ॥

इति पूषा सूक्त ।

वाग्ब्रह्म वादिनी सूक्त।

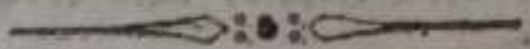

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि अह मादित्यैरुतविश्व-
देवैः। अहं मित्रावरुणोभा बिभर्मि अह मिन्द्राग्नी
अहमश्विनोभा ॥१॥

मैं रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण इत्यादिगणों के साथ विचरण करती हूं। इसके अतिरिक्त जितने देव हैं उन सब के साथ मैं ही विद्यमान होके पोषण कर रही हूं मैं मित्र और वरुण दोनों को धारण पोषण करती हूं। मैं इन्द्र और अग्नि और रात्रि का धारण पोषण करने हारी हूं ॥ १ ॥

अहं सोम माहनसं बिभर्मि अहं त्वष्टारमुत पू-
षणं भगम्। अहं दधामि द्राविणं हविष्मतेसुप्रा-
व्ये यजमानाय सुन्वते ॥२॥

मैं पालनधारक सोम यज्ञ को धारण करती हूं त्वष्ठा, पूषा, भग को रक्षा करता हूं सर्वदा हविष्मान् अर्थात यज्ञार्थ हविष्य वस्तुओं से युक्त सोमाभिषव करते हुए यजमान के लिये मैं सर्व दा धन रखती हूं अत मेरा यजन करो ॥२॥

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनांचिकितुषी प्रथमा यज्ञि

यानाम्। तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

ऐ मनुष्यो ! मैं ही ईश्वरी हूं मैं उपासकों को धन पहुंचाने हारी हूं यज्ञार्ह देवों में सर्वश्रेष्ठा हूं उस व्यापिनी जगन्माता मुझ को देवगण बहुत स्थानों में उपासना पूजा करते हैं मैं बहुत वस्तुवों में स्थिता हूं समस्त पदार्थों के यथायोग्य स्थान में वस्तु निवेश करने हारी मैं हूं ॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्। अमन्तवो मान्त उपक्षियन्ति श्रुधिश्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥

जो पशु कीट पतङ्गादि प्राणी देखते। जो वृक्षादि केवल श्वास प्रश्वास लेते और मनुष्यजाति वचन को सुनती वह २ सब ही प्राणी मेरे कारण अन्न खाते और अपने अस्तित्व रखते। परन्तु हे मनुष्यो ! मुझको न मानने हारे वे नास्तिक सर्वथा क्षीण हो जाते। ऐ श्रोता जीव ! तू सुन। तेरे लिये श्रद्धाजनक विज्ञान का उपदेश करती हूं ॥४॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः। यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥

हे मनुष्यो ! मैं स्वयं तुमको यह विज्ञान देती हूं। वि-

ज्ञानी और साधारण मनुष्यों से ब्रह्मात्मक वस्तु सदा सेवित और सेव्य है उस का उपदेश मैं स्वय देती हूं। जिस २ को मैं चाहती हूं उस २ को उग्र करती हूं मैं उस २ को ब्रह्मवित उस २ को ऋषि और उस २ को सुमेधावी बनतीहूं ॥५॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोमि अहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥ ६ ॥

दुष्टों के संहारकर्ता राजा के अस्त्र शस्त्रों को अच्छे प्रकार मैं ही जानती हूं निश्चय, मैं ही वेद और ईश्वर द्वेषी के और हिंसक क्रूर पुरुषों के हनन के लिये अस्त्र घोरण करती हूं। मैं स्वयं भक्तजन के लिये संग्राम करती हूं मैं द्यावा पृथिवी में सर्वत्र व्यापिनी हूं ॥ ६ ॥

अहं सुवे पितर मस्य मूर्धन् मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥ ७ ॥

"द्यौः पिता" इस श्रुति से सिद्ध है कि द्युलोक का नाम पिता है इस के ऊपर द्युलोक को मैं बनाती हूं व्य पक आकाश और समस्त जगत् में मेरा निवास स्थान है और मैं सम्पूर्ण भुवन में अनुप्रविष्टा हो के स्थिता हूं और मैं इस द्युलोक को लेकर निखिल जगत का शरीर से स्पर्श कर रही हूं ॥७

अहमेव वात इव प्रवामि आरभमाणा भुवनानि

विश्वा । परो दिवा पर एना पृथिव्या एतावती महिना सं बभूव ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण भुवनों को आरम्भ करती हुई मैं ही वायु के समान सर्वत्र विशेष रूप से स्थिता हूं द्युलोक से पर और इसपृथिवी से पर वर्त्तमाना होके स्थिता हूं महान् महिमा से मैं एतावती सर्वत्र विद्यमाना हूं ॥८॥

ऋग० १०- १२५, १-८

यत्र ज्योति रजस्त्रं यस्मिंल्लोके स्वर्हितम् तस्मिन्मां धेहि पवमाना:मृतेलोके अक्षत इन्द्रायेन्दो परिस्रव: ॥ १ ॥

हे पवित्र स्वरूप सर्वानन्द दायक जहाँ निरन्तर तेज है जिस लोक में सुख स्थित है उस अमर नाश रहित लोक में मुझ को परमैश्वर्य प्राप्ति के लिये धारण किजिये आनन्द वर्षाइये ॥१॥

यत्र राजा वैवस्वतो यत्रावरोधनं दिवः । यत्रा सूर्य हूति रापस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव: ।२

हे आनन्द प्रद देव जिस तुम मे सूर्य का प्रकाश प्रकाश

मान हो रहा है जिस तुझ में द्युलोक अर्थात बुरी कामनाओं की रुकावट है जिस तुझ में वह कारण रूप बड़े व्यापक आकाश रूप प्राण प्रद वायु है उस अपने स्वरूप में मुझ को मोक्ष प्राप्त कीजिये परमैश्वर्य के लिये मुझ को प्राप्त हूजिये ॥२॥

यत्रानुकामं चरणं त्रिनाके त्रिदिवे दिवः लोका।
यत्रा ज्योतिष्मन्तस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो
परिस्रव: ॥ ३ ॥

हे भगवान्! जिस तुझ में इच्छा के अनुकूल विहरणा है, जिस तुझ में तीसरे स्वर्ग पर तीनों प्रकाश के ऊपर स्वत: प्रकाश करने वाले यथार्थ ज्ञान युक्त ज्योति स्वरूप ज्ञानस्वरूप प्रकाश वाले हैं उस में मुझको मोक्ष प्राप्त कीजिये, परमैश्वर्य के लिये प्राप्त हूजिये ॥ ३ ॥

यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो
परिस्रव: ॥ ४ ॥

हे दयालु आनन्द युक्त पारब्रह्म जिस तुझ में सम्पूर्ण आनन्द और सब कामना निष्कामना हो जाती हैं और जिस तुझ में अपना ही धारण और पूर्ण तृप्ति है उस रूप में मुझको मोक्ष प्राप्त कीजिये और परमैश्वर्य के लिये अपना स्वरूप प्रकाशित कीजिये ॥ ४ ॥

यत्रानन्दाश्च मोदश्च मुदः प्रमुदः आसते। का-

यस्य यत्रामा कामस्तत्र मामृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव: ॥ ५ ॥

हे दयालु आनन्द युक्त ! जिस तुझ में सम्पूर्ण आनन्द और प्रसन्नता स्थित हैं, जिस में तुझ अभिलाषी पुरुष की सब कामना प्राप्त होती हैं परमैश्वर्य के लिये मुझको मृत्यु से रहित कीजिये और प्रेम वर्षाइये ॥ ५ ॥

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति ।
तदेव मन्येहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किंचन ॥६॥

जहां से सूर्य उदय होता है और जहां अस्त होता है उसी को मैं ज्येष्ठ मानता हूं। उसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता है ॥ ६ ॥

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु । शंनः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ ७ ॥

जहां २ चेष्टा करता है वहां वहां हम को अभय करो प्रजा से हमारा कल्याण करो, पशुवों से हमें अभय करो ॥७॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे । अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ८ ॥

हे जगदीश्वर अन्तरिक्ष द्युलोक भूलोक तथा पूर्व,

पश्चिम, उत्तर, अधर इन्हों से सब को भय शून्य करो ॥८॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परो
यः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम
मित्रं भवन्तु ॥ ९ ॥

अथर्व० १९, १५, ५-६

मित्र शत्रु प्रत्यक्ष दिन रात्रि हम सब को भय शून्य हों तथा सम्पूर्ण दिशाओं में हमारे मित्र हों, शत्रु न हों ॥९॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वाति ब्र-
ह्मणस्पतिर्मे तद्दधातु शंनो भवतु भुवनस्य
यस्पतिः ॥ १० ॥

जो कमी आंख हृदय मन की और बहुत कमी बड़ा स्वामी जो मेरा चक्षु और हृदय में न्यूनता और मेरे मन में व्याकुलता वह बृहस्पति देव पूर्ण कर देवें। संसार के स्वामी हम पर प्रसन्न होवें ॥ १० ॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि
समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ ११ ॥

यजु० ३६, मं० १८

हे सर्व दुःख विनाशक! हम को सत्य सुख और शुभ

गुणों से सदा बढाइये। मुझ को सारा जगत् मित्र की चक्षु से देखे, मैं सारे जगत को मित्र चक्षुओं से देखूं और हम सब आपस में मित्र की चक्षुओं से देखें ॥११॥

नमस्ते हर्व शोचिषे नमस्तेऽस्त्वर्चसे अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ १२ ॥

हे पाप विनाशक बुद्धि प्रकाशक आप को पूजनीय नमस्कार हो। आप की अटल व्यवस्था हम से भिन्न अन्याइयों को दग्ध करें, आप हमारे लिये पवित्र कर्ता बल दायक हो ॥१२॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिण मिच्छते ॥१३॥

ब्रह्मचर्य रूप तप के साधन से राजा राष्ट्र का विशेष संरक्षण करता है। आचार्य भी ब्रह्मचर्य के साथ रहने वाले ब्रह्मचारी की ही इच्छा करता है ॥ १३ ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विंदते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥१४॥

कन्या ब्रह्मचर्य पालन करने के पश्चात् तरुण पति प्राप्त करती है। बैल, और घोड़ा भी ब्रह्मचर्य पालन करने से ही घास खाता है ॥१४॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वरा भरत् ॥ १५ ॥

अथर्व

ब्रह्मचर्य रूप तप से सब देवों ने मृत्यु को वसमें किया। इंद्र ब्रह्मचर्य से ही देवों को तेज देते हैं ॥ १५ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धा मनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥१६॥

यजु० १९, मं० ७७

हे मनुष्यो तुम सब लोग सब प्रकार से सब काल में सत्य ही में प्रीति करो असत्य में कभी प्रीति नहीं करनी चाहिये ॥ १६ ॥

अग्ने व्रत पते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मेराध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्य मुपैमि ॥१७॥

यजु० १, ५

हे सत्यपते परमेश्वर। मैं सत्य व्रत का आचरण करूंगा मेरे व्रत को पूरा कीजये उस के सिद्ध करने वाले आप ही हो सो यह व्रत है कि मैं असत्य कामों से छूटकर सत्याचरण में रहूं ॥ १७ ॥

व्रतेन दीक्षा माप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।

दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्य माप्यते॥ १८ ॥

यजु० १९, ३०

व्रत से अधिकार के फल को पाता है, फल की प्राप्ति से सत्कार को पाता है, सत्कार से श्रद्धा को पाता है और श्रद्धा से सत्य को प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ १९ ॥

ऋग० ६, ६, ३

हे इन्द्र परमेश्वर आप के अनन्त बल से सब संसार का धारण आकर्षण और पालन होता है इस कारण से सब लोक अपनी २ कक्षा और स्थान से इधर उधर चलायमान नहीं होते ॥१९॥

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ २० ॥

ऋग० ६, ६, ५

हे परमेश्वर। जब उन सूर्य आदि लोकों को रचा और आप अपनी अनन्त सामर्थ्य से धारण कर रहे हो इस के अनन्तर सारे लोकों का आकर्षण से धारण करते हैं ॥ २० ॥

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्

परिधिः क आसीत् । छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्तः ॥ २१ ॥

ऋग ८, १८, ३

प्रमा क्या है, और प्रतिमा क्या चीज़ है, जिस से कार्य उत्पन्न होता है वह क्या है, सार वस्तु क्या है, परिधि किस को कहते हैं स्वतंत्र वस्तु क्या है, प्रयोग और स्तुति करने योग्य क्या है ? इन का उत्तर है कि जिस को सब लोग पूजते हैं वही प्रमा आदि नाम वाला है ॥२१॥

तेजोसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥२२॥

यजु० १९, ९

हे परमेश्वर आप तेज रूप हैं मुझे तेज रूप कीजिये पुरुषार्थ रूप हैं पुरुषार्थ दीजिये, बल रूप हैं बल दीजिये, सामर्थ्य के निवास हैं सामर्थ्य दीजिये, क्रोध रूप हैं दुष्टों पर क्रोध दीजिये, सहन करने हारे हैं सहन शक्ति दीजिये ॥२२॥

अष्टाङ्गिशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे योग प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च नमो

ऽह्नो रात्रीभ्यः नमस्तु॥२३॥

हे परमेश्वर ! दश इन्द्रिय, दश प्राण , मन, बुद्धि चित्त अहकार, विद्या स्वभाव शरीर और बल यह उपासना योग को सदा सेवन करें और उस योग द्वारा रक्षा करो और रक्षा से योग को प्राप्त करा अतः रात दिन नमस्कार करते हैं ॥२३॥

भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभु प्रभू रिति त्वोपास्महे वयम् ॥२४॥

हे इन्द्र आप शच्या के पति हैं, सर्व शक्तिमान, पापों के नाश करने वाले, सब में व्यापक और सब सामर्थ्य वाले हैं। हम आप की उपासना करते हैं ॥२४॥

नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत। अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥२५॥

अथर्व १९, ८, मं० ८-११

हे परमेश्वर ! आप अनुग्रह से सदा हमको देखिए आप को सदा नमस्कार करते हैं कि अन्नादि से, कीर्त्ति से, तेज से, और सम्पूर्ण विद्या से युक्त हम लोगों को कीजिए हम आप की सदा उपासना करते हैं ॥ २५ ॥

अम्भो शमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम्॥२६।

हे भगवन ! आप शान्त स्वरूप, ज्ञान के देने वाले, सब के पूज्य, सब के सहन करने वाले हैं इस प्रकार का ज्ञान

कर हम आप की उपासना करते हैं ॥ २६ ॥

अम्भो अरुणं रजतं रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥२७॥

आप शान्त स्वरूप, प्रकाश स्वरूप, आनन्द रूप, ऐश्वर्य से युक्त, और सहन शक्ति वाले हैं। अतः हम आप की उपासना करते हैं ॥ २७ ॥

उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ॥२८॥

आप बल वाले, आदि अन्त रहित, भली प्रकार से व्यापक और सब के निवास स्थान हैं। अतः हम आप की उपासना करते हैं ॥ २८ ॥

प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ॥ २९ ॥

अथर्व १३, ४, १ - १५

हे परमात्मन! आप सब जगत् में उत्तम हैं, सब का धारण पोषण करने वाले हैं, सब के जानने योग्य आप ही हैं अतः हम आप की उपासना करते हैं ॥ २९ ॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि।
राजा मे प्राणो अमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥३०॥

यजु० ५० मं० ५.

श्री मेरा शिर स्थानी, कीर्त्ति मेरा मुख, सत्यगुणों का प्रकाश मेरे केश, दाड़ी और मूंछ के समान तथा ईश्वर मेरा प्राण, अमृत स्वरूप जो ब्रह्म है वह मेरा सम्राट और जो अनेक विद्याओं से प्रकाश युक्त है वही मेरा श्रोत्र है वही आंख है ॥ ३० ॥

आचार्य उपनयनो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भ मन्तः।
तं रात्रिस्तिस्रः उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः॥३१॥

अथर्व ११, ५, मं० ३

ब्रह्मचारी को अपने पास रखने वाला आचार्य उसको अपने अन्दर करता है उस ब्रह्मचारी को अपने उदर में तीन रात्री तक रखता है जब वह ब्रह्मचारी द्वितीय जन्म ले कर बाहर आता है तब उस को देखने के लिये सब विद्वान सब प्रकार से इकट्ठे होते हैं ॥ ३१ ॥

पुनन्तु मा देवजना पुनन्तु मनसा धियः पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥३२॥

यजु० १९, ३९

हे जात वेद परमेश्वर ! आप मुझे पवित्र कीजिये आप मेरी बुद्धि को पवित्र कीजिए। सब संसारी जीव आप की कृपा से पवित्र होकर आनन्द में रहें ॥ ३२ ॥

अधः पश्यस्व मोपरी संतरां पादकौ हर। माते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥ ३३ ॥

ऋग ८, ३३-१९

हे स्त्री! ऊपर देख कर मत चलो नीचे देख कर चलो दोनों पैरों को मिला के सभ्यता पूर्वक उठाओ। तुम्हारे वस्त्र-स्थल को कोई न देख सके। क्योंकि स्त्री जाति ब्रह्मवादिनी हुवा करती हैं ॥ ३३ ॥

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः। श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥ ३४ ॥

श्रद्धा से अग्नि प्रज्वलित किया जाता है, श्रद्धा से हवि राहुति दी जाती है। ऐश्वर्य के शिर पर स्थित जो श्रद्धादेवी है उस को विविध वचन से जगत में प्रख्यात करते हैं ॥३४॥

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि। श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धा पयेह नः ॥ ३५ ॥

हम प्रातः काल श्रद्धादेवी बुलाते हैं मध्याह्नकाल में शद्धादेवी को बुलाते हैं। सूर्य की अस्त वेला में भी श्रद्धादेवी को बुलाते हैं श्रद्धे! आप यहां हम को श्रद्धान्वित कीजिए।३५

श्रद्धां देव यजमाना वायु गोपा उपासते। श्रद्धां हृदय्या कूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥ ३६ ॥

१०, १५१, १, ५४

ईश्वर रक्षित देव और यजमान श्रद्धा की ही उपासना करते हैं। हार्दिक संकल्प द्वारा श्रद्धा की ही उपासना करते हैं क्योंकि श्रद्धा से अभीष्ट वित्त पाता है ॥३६॥

उक्षो हि मे पंचदश साकं पचन्ति विंशतिम् । उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी प्रिणन्ति मे ॥३७॥

ऋग० १०, ८३, १४

हे इन्द्राणी ! निश्चय मेरे लिये १५ और बीस वृषभ पकाते हैं और मैं उन को खाता हूं तब मैं बहुत स्थूल हो जाता हूं और मेरा दोनों बगलों का तृप्त करते हैं ॥३७॥

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जंघहे ।

ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥३८

जब बुद्धि भली प्रकार गृहीता और परिगृहीता होती हैं तो वह मुझे सैंकड़ों पदार्थ देती है और प्रिया स्त्री के समान आलिङ्गन करती है ॥३८॥

उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।

सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका॥३९॥

ऋग० १, १२६, ६-७

हे उपासक मनुष्य ! मेरे निकट २ अतिशय स्पर्श करो मेरे निकट स्वल्प वस्तुएं हैं ऐसा मत समझो। मैं, सम्पूर्ण तया गन्धारी की भान्ति लोमों से युक्त हूं ॥३९॥

नोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्य ब्रवीमि वध

इत्सतस्य नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥४०॥

ऋग० १०, ११७, ६

अज्ञानी पूरुष व्यर्थ ही अन्न पाता है न वह इस धन से यज्ञ को पुष्ट करता है और न अपने मित्र को ही पुष्ट करता है अतः केवल भोक्ता केवल पापी होताहै ॥४०॥

वस्यां इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः । माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥४१॥

ऋग० ८, १, ६

हे इन्द्र! आप मेरे पिता से भी अधिक धनाढ्य हैं और अरक्षक भ्राता से भी अधिक पालक हैं हे वसो ! मेरी माता और आप दोनों तुल्य हैं क्यों कि आप मेरी व्यापकता और पूज्य धन के लिये मुझ को जगत् में पूजित कर रहे हैं ॥४१॥

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शत क्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥४२॥

ऋग० ८, ९८, ११.

हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के बसाने हारे ! हे अनन्त कर्म कारिन ! आप ही हम सब लोगों के पालक पिता हैं और आप ही माता हैं इस कारण आप से ही सुख की प्रार्थना करते हैं ॥ ४२ ॥

वात आवातु भेषजं शम्भु मयोभुनो हृदे प्रण

आयूंषि तारिषत् ॥४३॥

ऋग० १०, १८६, १.

हे परमात्मन ! आप से यह आशीर्वाद चाहते हैं कि आप के अनुग्रह से यह वायु रोग नाशक, हृदय सुख कारक औषध को हमारे लिये प्रवाहित करें ॥४३॥

भोजायाश्वं संमृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या शुम्भमाना भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देव मानेव चित्रम् ॥४४॥

ऋग० १०, १०७, १०.

परिचारक गण दानी के लिये शीघ्र गामी अश्व प्रस्तुत करते हैं। दानी के लिये सुशोभनाना वस्त्राद्यलंकृता युवती प्राप्त होती है। दानी का ही गृह कमल विभूषित सरोवर के तुल्य दीखता है और देव निर्मित सुन्दर चित्र विचित्र होता है ॥४४॥

ब्रह्म सूक्त।

कति देवाः कतमे त आसन् य उरो ग्रीवाश्चिक्युः पुरुषस्य।
कति स्तनौ व्यदधुः कः कफोडौ कति स्कन्धान् कति पृष्टी-
रचिन्वन ॥ १ ॥

कितने और कौनसे वे देव थे कि जिन्होंने मनुष्य की छाती और गला जोड़ दिया। किन्हों ने स्तन बनाये? किस ने कोहनी और किस ने कन्धे और किस ने पीठ रचे थे? ॥ १ ॥

केन श्रोत्रिय माप्नोति केनेमं परमेष्ठिनम्। केनेममग्निं पुरुषः केन संवत्सरं ममे ॥ २ ॥

किस से मनुष्य विद्वान को प्राप्त होता है? किस से इस परमात्मा को प्राप्त होता है किस से इस अग्नि को प्राप्त होता है? किस से वर्ष को मिलता है? ॥ २ ॥

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौ रुत्तरा हिता। केनेदं मूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचोहितम् ॥ ३ ॥

किसने यह पृथिवी बनाई किस ने द्युलोक स्वर्ग ऊपर रचा है किस ने यह अन्तरिक्ष बीचका अवकाश ऊपर तिरछा और व्यापा हुआ रचा है ॥ ३ ॥

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा। पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ४ ॥

जिस के कारण इस को पुरुष कहते हैं, ऐसे ब्रह्म के नगर को जो जानता है उसको बुढापे के पहिले आंख नहीं छोड़ती हैं तथा प्राण भी नहीं छोड़ता है ॥ ४ ॥

अष्ट चक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥५॥

जिस में आठ चक्र हैं और जिस के नौ दरवाजे हैं, ऐसी यह देवताओं की नगरी "अयोध्या" है उस में प्रकाश से भरा हुआ तेजोमय कोश है। वही स्वर्ग अर्थात् प्रकाश-मय है ॥ ५ ॥

इति ब्रह्म सूक्त।

उच्छिष्ट सूक्त।

अथर्व० कां० १० सू० २

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः। उच्छिष्ट इन्द्र-श्चाग्निश्च विश्वमन्तः समा हितम् ॥ १ ॥

ईश्वर में नाम और रूप है। ईश्वर में पृथिव्यादि लोक रक्खा है। ईश्वर में इन्द्र विजयी और अग्नि है उच्छिष्ट के अन्दर सब जगत रहा है ॥ १ ॥

उच्छिष्टे द्यावा पृथिवी विश्वं भूतं समा हितम। आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥ २ ॥

ईश्वर में द्युलोक, पृथिवी सब बना हुआ वस्तु मात्र रहा है। ईश्वर में जल, समुद्र, चन्द्र और वायु रहा है ॥२॥

शर्करा सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणाः अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रता श्रिताः ॥ ३ ॥

मिट्टी बालरेत, पत्थर, औषधी, वनस्पति, घास, बादल

मेघ, बिजली, वृष्टि ये सब ईश्वर में ठहरते हैं। अर्थात घास के तिनके से लेकर आकाश तक सब पदार्थ उसी के आश्रय हैं ॥ ३ ॥

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ ४ ॥

जो प्राण से जिन्दा है, और जो आंख से देखता है, वह सब ईश्वर से उत्पन्न हुये हैं आकाश द्युलोक में रहे हैं ॥ ४ ॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरश्चये। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ ५ ॥

देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा ये सब उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए हैं और वे सब प्रकाश मय लोक में ठहरे हैं ॥ ५ ॥

इति उच्छिष्ट सूक्त।

ज्येष्ठ ब्रह्म सूक्त।

अथर्व कां० सू० १

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत तत्रा हतास्त्रीणि शतानि शंकवः षष्टिश्च खीला अविचाचलासे ॥ १

बारा परीघ हैं तीन नाभ हैं वहां जो तीन सौ शंकु न हिलने वाले और साठ कील रक्खे हैं, ऐसा जो एक चक्र है

कौन निश्चय से उसे जानता है ? ॥ १ ॥

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तीस्मन् यशो निहितं विश्व रूपं । तदा सत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभुवुः ॥२

जिसका मुंह तिरछा है जिसका तला ऊपर है, ऐसा चमचा या कटोरा जो है, उस में सब जगत का रूप बनाने वाला यश रखा है। वहाँ साथ - ठहरते हैं सात ऋषी जो इस के रक्षक बने हैं ॥ २ ॥

या पुरस्ताद् युज्यते या च पश्चाद्या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः । यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम् ॥ ३ ॥

जो पहले उपयोग की जाती है, जो पीछे से उपयोग की जाती है, जो सर्वत्र उपयुक्त होती है। जिस से यज्ञ आगे बढ़ता है। वह ऋचा तुम से पूछता हूं कौनसी वह है ? ॥३॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा विजायते । अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः॥ ४ ॥

न दीखने वाला प्रजाओं का पालक सब के मध्य के अन्दर व्यापता है और अनेक प्रकार से बिविध रीति से परिवर्तन करता है आधे से सब जगत उत्पन्न किया जो इस का दूसरा आधा है उस का वह कौनसा चिन्ह है ? ॥४॥

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे । यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः ॥ ५ ॥

यह देवता कल्याण करने वाली बुड्ढी न होने वाली और मरने वाले के घर में न मरने वाली है जिस के लिये यह कार्य करती है, वह कार्य करता है, कृत कार्य होता है और जो सोता है वह जीर्ण होता है ॥ ५ ॥

उतैषां पितोत वा पुत्र एषा मुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः । एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः ॥ ६ ॥

इन का निश्चय से पिता अथवा इन का पुत्र इन में श्रेष्ठ अथवा कनिष्ठ ऐसा एक ही देव मन में घुसा हुआ है जो पहले उत्पन्न हुआ था वही अब गर्भ के अन्दर है ॥६॥

पूर्णात पूर्णमुदचति पूर्ण पूर्णेन सिच्यते । उतो तदद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते ॥ ७ ॥

पूर्ण से पूर्ण का उदय होता । पूर्ण से पूर्ण सींचा जाता है निश्चय से वह आज हम जानेंगे कि जहां से वह चारों ओर से सींचा जाता है ॥ ७ ॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति । देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥ ८ ॥

ईश्वर पास रहने वाले उपासक को छोड़ता नहीं । जीव पास रहने वाले ईश्वर को भी देखता नहीं । देव का काव्य देखो । वह देव मरता नहीं और न बुड्ढा होता है ॥८॥

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः । अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥ ९ ॥

जिस प्रकार चक्र के आरे नाभि में लगे रहते हैं, उसी प्रकार जहां देव और मनुष्य आश्रित हैं वह प्रकृति या कर्मों का फूल जहां कुशलता से स्थापित है, वह स्थान तुम से पूछता हूं ॥ ९ ॥

येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सधीचीः ।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन ।१०

जिन से प्रेरा हुआ वायु चलता है। जो मिले हुये पांच दिशायें, दिशाओं में रहे हुये सब पदार्थ देते हैं। जो देव हवन को अत्यन्त मानते हैं वे कौन प्रकृति के या कर्मों के नेता हैं ॥ १० ॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोन्तरिक्षं पर्येको बभूव । दिव मेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके ॥ ११ ॥

इन में से इस पृथ्वी के ऊपर एक रहता है। अन्तरिक्ष में एक व्याप्त है इन में से द्युलोक को जो एक धारण कर्त्ता आधार देता है। अन्य देव सब दिशायें रक्षण करते हैं ॥ ११ ॥

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः । सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्यात् ब्राह्मणं महत् ॥ १२ ॥

जिस में यह प्रजायें पोई हुई हैं उस तने हुए सूत्र धागों को जो जानता है और जो धागे का धागा जानता है वह बड़े ब्रह्म को जानता है ॥ १२ ॥

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः । सूत्रं सूत्रस्याहं

वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥ १३ ॥

मैं तना हुआ धागा जानता हूं। जिस में यह सृष्टि परोई गई है वह धागे का धागा मैं जानता हूं। और जो बड़ा ब्रह्म है वह भी मैं जानता हूं ॥ ॥ १३ ॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्। तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्म विदो विदुः ॥ १४ ॥

तीन रस्सियों-गुणों से घेरा हुआ नौ द्वारों वाला कमल है उस में जो आत्मा वाला पूज्य है, उसी को ब्रह्म ज्ञानी जानते हैं ॥ १४ ॥

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ।१५

निरिच्छ धैर्य वाला अमर स्वयं सिद्ध तत्व से तृप्त कहीं से भी न्यून नहीं ऐसे धैर्य वाले वृद्धावस्था से रहित जवान उसी आत्मा को जानने वाला मृत्यु से नहीं डरता है ॥ १५ ॥

इति जेष्ट ब्रह्म सूक्त।

अथर्व० का १०; सू० ८

प्राण सूक्त।

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे। नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥ १

हे प्राण शब्द-रूपी तेरे लिये नमस्कार, गरजने वाले बादल रूपी तेरे लिये नमस्कार, हे प्राण ? बिजुली-रूपी तुझको नमस्कार, हे प्राण ? वर्षा-रूपी तेरे लिये नमस्कार है ॥ १ ॥

अन्तर्गर्भश्चरति देवता स्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत् पिता पुत्रं प्रविवेशा शचीभिः ॥ २॥

देवताओं की इन्द्रियों के बीच में रहा हुवा एक बार पैदा हुवा फिर गर्भ में प्रत्येक पदार्थ के मध्य में घूमता है। वह निश्चय से फिर उत्पन्न होता है। वह पिता भूत, वर्तमान और भविष्यत काल के सब शक्तियों के साथ पुत्र में प्रविष्ट हुवा ॥ २ ॥

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्। यदंग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान् न रात्री नाहः स्यान्न व्युच्छेत कदाचन ॥ ३ ॥

हंस-प्राण जल से ऊपर उठता हुवा एक पांव को नहीं खेंचता हे प्रिय यदि वह उसे खेंचेगा तो कोई भी नहीं आज और नहीं कल होगा रात्री नहीं और न दिन होगा। इस लिये प्राण का कभी भी उच्छेद न हो ॥ ॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तुते ॥४॥

हे प्राण जो सब को जन्म देने वाले हल चल करने वाले इस सब विश्व का स्वामी है। दूसरों में तत्काल धनुष चलाने वाले उस तुम्हारे लिये नमन है। आलस रहित ब्रह्म के कारण धैर्यशाली प्राण मुझे सहायक हो ॥ ४ ॥

प्राण मा मत्यर्या वृतो न मदन्यो भविष्यसि। अपांगर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥५॥

अथर्व ०कां० ११ सू० ४

हे प्राण मेरे से न पीछे हटो मेरे से विभक्त न होओ। पानी के गर्भ के समान जिन्दा रहते हो। हे प्राण तुझ को मेरे मे बांधता हूं ॥५॥

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापति। प्रजापति र्विराजति - विराडि न्द्रोऽभवद्वशी ॥६॥

देश में अध्यापक ब्रह्मचर्य युक्त होना चाहिये। प्रजा का पालन करने वाले राजा और राज पुरुष ब्रह्मचारी होने चाहिये। इस प्रकार का राजा विशेष प्रकार से चमकता है। इस प्रकार चमकने वाला और इन्द्रियों को वश में रखने वाला राजा इन्द्र होता है ॥६॥

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरि रेताः तमारोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥

बड़े बल वाला बुड्ढा न होने वाला सहस्रों नेत्रों वाला सात किरणों वाला काल रूपी अश्व चलता है। उसके चक्र सब गोल हैं, सब भुवन हैं। ज्ञानी दूरदर्शी उस पर चढ़ते हैं ॥१

सप्त चक्रान् वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतंन्वक्षः। स इमा विश्वाभुवनान्यञ्जत् कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ २ ॥

यह काल सात चक्रों को चलाता है इस के सात नाभि हैं। इस का चक्र दृढ़ अमरपन है। वह इन सब भुवनों को प्राप्त करता है। वह काल निश्चय से पहिला देव समझा जाता है ॥ २ ॥

यदि नो गाँ हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्। तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥३॥

अथर्व० १, १६, ४.

यदि गौका वध करोगे यदि घोड़े का वध करोगे तो तुम को हम खासे से मार डालेंगे जिस से हमारे अन्दर निर्बलों का हनन करने वाला तू हो गया वैसा कोई भी न हो सके ॥३

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यो देवानाँ नाम-ध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ४ ॥

ऋग० १०, ६०.

वह हमारा पिता है। उत्पन्न कर्ता है! और वह भाई है। सब भुवन और सब स्थान वह जानता है। जो देवताओं का यश धारण करता है और जो एक ही है। उस के पास प्रश्न पूछने के लिए सब भुवन मिल कर जाते हैं ॥ ४ ॥

यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम् । कन्या-नाँ विश्व रूपाणाँ मनो गृभायौषधे ॥५॥

जो अन्दर हो वही बाहर हो और जो बाहर वही अन्दर हो। हे दोषों को दूर करने वाले! अनेक सुन्दर रूप वाली कन्याओं के मन का विचार करो ॥ ५ ॥

एयमगन् पति कामा जनिका मोहमाग-मम् । अश्वः कनिक्रदद्या भगोनाई सहो-

गमम् ॥ ६ ॥

अथर्व० २, ३०, ४-५.

यह पती का इच्छा करने वाली आ गई। स्त्री की इच्छा करने वाला मैं आया हूं। जैसा हिनहिनाने वाला घोड़ा बलवान होता है, वैसा भाग्य धन के साथ में आया हूं ॥ ६ ॥

इन्द्रस्य या महो दृषत् क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी। तया पिनष्मि सं क्रिमीन् दृषदा खल्वाँ इव ॥ ७ ॥

अथर्व० २, ३१, १.

सब क्रिमियों का नाश करने वाले इस इन्द्र का जो बड़ा पत्थर है उस से मूंगी को पत्थरों द्वारा जैसा पीसते हैं वैसे क्रिमियों को नष्ट करता हूं ॥ ७ ॥

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः। ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥ ८ ॥

अथर्व० २, ३२ १.

उदय होने वाला सूर्य क्रिमियों का नाश करे अस्त होने वाला सूर्य किरणों से क्रिमियों का नाश करे। जो कृमि भूमि और आकाश के अन्दर हैं ॥ ८ ॥

अहं गृभणामि मनसा मनाँसि मम चित्त

मनु चित्तेभिरेत । मम वशेषु हृदयानि वः कृणोमि मम यात मनुवर्त्मान एत ॥ ९ ॥

अथर्व० ३, ८, ६.

मैं अपने मन से आप के मनों को आकर्षित करता हूं। वे अपने चित्तों से मेरे चित्त के अनुकूल रहें। मैं आप के अन्तः करणों को वश में करता हूं। आप भी मेरे अनुगामी मार्ग से जाइए ॥ ९ ॥

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धन मिच्छमानः । तस्मिन्म इन्द्रो रूचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ।१०

अथर्व० ३, १५, ६.

हे व्यवहार चतुर लोको ! धन से धन की प्राप्ति की इच्छा करने वाला मैं जिस धन से व्यापार करता हूं उस व्यापार में परम ऐश्वर्यवान् प्रजा पालक सकल जगदुत्पादक विद्वान् तेजस्वी ईश्वर मेरी रुची धारण करे रक्खे ॥ १० ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रा वरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मण-

स्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे ॥ ११ ॥

अथर्व० ३, १६, १.

सवेरे तेजस्वी ईश्वर की तथा प्रातः काल में परमैश्वर्य वान ईश्वर की प्रार्थना करते हैं। सवेरे मित्र और स्वीकार करने योग्य ईश्वर को तथा प्रातः काल में पोषक और हिंसक शक्ति शाली ईश्वर की प्रार्थना करते हैं। सवेरे भाग्यवान, पुष्टि देने वाले ज्ञान के स्वामी ईश्वर की प्रार्थना करते हैं और प्रातःकाल में शान्त्यादि गुण युक्त और भीषण गुण युक्त ईश्वर की प्रार्थना करते हैं ॥ ११ ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सद मुच्छन्तु भद्राः । घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १२

अथर्व० ३, १६, ७.

घोड़ों से युक्त गौवों से युक्त शूरवीर पुरुषों से युक्त कल्याण कारक उषः काल हमारे घरों को सुशोभित करें। घी का दोहन करने वाले और सब ओर से पुष्ट हुए २ आप श्रेष्ठ हम सब को स्वास्थ्य की रक्षा करके सुरक्षित करें ॥ १२ ॥

सीरा युंजन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥ १३ ॥

अथर्व० ३, १७, १.

ज्ञानी लोग हल जोतते हैं। और विद्वानों के लिए भक्ति धारण करने वाले। धैर्यशाली पु रुष अलग २ हलका जुआ फैलाते हैं॥ १३ ॥

नीचैः पद्यन्ता मधरे भवन्तु येनः सूरिं म-
द्यवानं । पृतन्यान् क्षिणामि । ब्रह्मणो मि-
त्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥ १४ ॥

अथर्व० ३, १९, ३.

जो शत्रु हमारे विद्वान् को और धनवान् को अथवा शूरों को सैन्य द्वारा नष्ट करना चाहते हैं वे नीचे गिर पड़ें और वे नीचे हो जांय। ज्ञान, ईश्वर शक्ति आदि से शत्रुओं का नाश करता हूं और मैं अपने लोकों को उन्नति के प्रति ले जाता हूं॥ १४॥

माता देवाना मदिते रनीकं यज्ञस्य केतु-
र्बृहती विभाहि । प्रशस्तिकृद्ब्रह्मणे नो
व्युच्छा नो जने जनय विश्ववाणे ॥ १५

ऋग० १, ११३, १६

अय सम्पूर्ण विश्व को धरण स्वीकार करने वाली तू सारे जीवन जगत् की मानो जननी है प्रकृति माता की मानो सैनिक शक्ति है और जीवन यश की मानो ध्वजा है सुख सौंदर्य।

को उन्नत करती हुई एवं सत्कर्मों का विस्तार करती हुई महान ज्ञान प्रकाश के लिये कलजा व्यापजा और प्राणी मात्र को तेजस्वी बनादे॥१५॥

देवीं वाच मजयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति । सा नो मन्द्रेष-मूर्जं दुहानां धेनु-वाग्गस्मा-नुप सुष्टुतैतु ॥ १६

ऋग० ८, १००, ११

इस वाणी देवी को इन्द्रिय देवों की दिव्य शक्तियें विकसित करती हैं फिर इस विकसित वाणीको सभी प्राणी अपने अपने अनुकूल बोलते हैं। हे सर्वज्ञ स्वामिन् वही आनन्द मयी एवं प्रशंसनीय वाणी रूप कामधेनु बल तेज तथा ओज का दोहन पूरि पूर्ण करती हुई हमें प्राप्त हो ॥ १६ ॥

तां पूषन् शिवतमा मेरयस्व यस्मां बीजं मनुष्याः वपंति । या न उरु उशती विश्रायते यस्या मुशन्तः प्रहराम शेपम् ॥ १७ ॥

ऋग० १०, २५, २

अय पालक शक्तियों के स्वामिन्? मानव संसार में उस कल्याण मयी माता की प्रेरणा करो की जिस में मनुष्य की जीवन शक्तियों का उत्तम से उत्तम बीज डाला जाता है

जो हमें पूर्ण कामना के साथ आश्रय दे सके और जिस में हम सम्पूर्ण जीवन का संचार पासकें ॥१७॥

नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः । यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमावृक्ष देवाः ॥१८॥

बड़ों के लिये नमस्कार हो छोटों के लिये आदर हो युवकों के लिये मान हो और सब के लिये भला हो यदि होसके तो सभी गुरु जनों की सेवा करें हे गुरुजनों अशीर्वाद दो की बड़ाई का नष्ट करने वाला कभी न बनू ॥१८॥

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभि द्रोहं चरामसि । प्रचेता न अङ्गिरसो द्विषतां पात्वं हसः ॥१९

ऋग० १०, १६४, ४

हे इन्द्र अपनी अज्ञानता से हम जो भी द्वेष अथवा द्रोह का आचरण करते हैं उस द्वेष एवं द्रोह रूपी पाप से आप एक सच्चे तत्व ज्ञानी की भान्ति सुरक्षित करते हैं ॥१९॥

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेनाप्य यस्व । आ वयं प्यायिषी महि गो-

भिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहै धनेन ॥ २०॥

अथ० ७, ८१, ५

हे चाद्रात्मन् ! जो हम से द्वेष रखता अथवा जिस से हम द्वेष रखते हैं उसे भी तू जीवन दे। हम सब गाय, बैल घोड़ा, पुत्र पौत्र, पशु, घर एवं धनादि से भरपूर हों ॥ २० ॥

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानडुत्सु नः। बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ २१ ॥

ऋग० ३, ५३, १८

हे परमात्मन् ! आप ही बल के देने वाले हैं। हमारे शरीर रथ के घोड़ों में बल वीर्य का संचार करो, हमारे छोटे एवं बड़े सभी जीवन के लिए जीवन बल का दान हो ॥ २१ ॥

योनः सुप्तान् जाग्रतो वाभिदासात् तिष्ठतो वा चरतो जातवेदः । वैश्वानरेण सयुजा सजोषा स्तान प्रतीचो निर्दह जातवेदः। २२ ॥

अथ० ७, १०८, २

हे भगवन। जो हम सोए हुवों को या जगते हुवों को बैठे हुवों को अथवा चलते फिरतों को दास बनाता है। हे भगवन् प्रेम रखने वाले साथियों की सहायता से उन को

यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिण अन्वैच्छ-न्देवास्तपसा श्रमेण। तान्देवीं वाचं हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके।२३

मन्त्रों के बनाने वाले दिव्य गुण मनस्वी ऋषियों ने जिस देवी वाणी को अत्यन्त परिश्रम और तप से प्राप्त किया उसी को हम हवि से अर्चित करते हैं। वह हम को सुकृत (स्वर्ग) लोक में स्थापित करे ॥ २३ ॥

वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे वाचं गन्धर्वाः पितरो मनुष्याः। वाचीमा विश्वा भुवना-न्यर्पिता सा नो हवं जुषतामिन्द्र पत्नी।२४

विश्व में देवगण अपना जीवन वाणी से स्थिर रखते हैं गन्धर्व, पितर और मनुष्य भी वाणी के द्वारा ही अपना काम चलाते हैं यह चतुर्दश भुवन भी वाणी में ही अधिष्ठित हैं। ईश्वर की पत्नी वह वाणी हमारी प्रार्थना को स्वीकृत करे ॥२४

यो ममार प्रथमो मर्त्यानां वः प्रेयाय प्रथमो

लोकमंतम् । वैवस्वतं संगमनं जनानां यम
राजानं हविषा उपयंत ॥ २५

मर्त्यों के बीच में जो पहले मरा और मर कर जो इस लोक में पहिले आया, मनुष्यों के संगमन उस वैवस्वत यमराज को हवि से सत्कृत करो ॥ २५ ॥

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वेशीर्षे सप्त
हस्तासो अस्य त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महोदेवो मर्त्यां आविवेश ॥ २६

नाम, आख्यात; उपसर्ग, निपात यह चार शृंग है, भूत, भविष्यत, वर्तमान, यह तीन काल ही उस के तीन चरण हैं। नित्य और कार्य यह दो भेद उस के दो शिर हैं। सात विभक्ति ही सात हस्त हैं। हृदय कण्ठ शिर इन तीन प्रदेशों में वह बंधा है। ऐसा हो कर वह मनुष्यों में प्रविष्ट हुआ है ॥ २६ ॥

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।२

सुबन्त तिङन्त भेद से अनेक प्रकार के रूप धारण करने वाले जो त्रेसठ वर्ण सर्वत्र व्याप्त हो रहे हैं ईश्वर उन के स्वरूपों को आज मेरे में बल पूर्वक स्थापन करे ॥ २७ ॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदु-
र्ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहिता
नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।२८

जो परा पश्यन्ति मध्यमा वैखरी स्वरूप हैं। उन चारों को पूर्ण रूप से ब्राह्मण ही जानते हैं औरों के लिये वाणी के तीन भेद गुप्त है अन्य वर्ण केवल वैखरी को ही व्यवहार में लाते हैं॥ २८॥

उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न
शृणोत्येनाम् । उतोत्वस्मै तन्वं विसस्ते
जायेव पत्य उषती सुवासाः ॥ २९

मूर्खजन एक पदार्थ को देखता हुआ भी नहीं देखता है, सुनता हुआ भी नहीं सुनता है, इस लिऐ वाणी मूर्ख के समक्ष नहीं किन्तु विद्वान के समक्ष में है, जैसे पति के समक्ष स्त्री अपने समस्त भेद अङ्ग प्रत्यङ्ग रूप से उपस्थित कर देती है॥ २९॥

अक्षैर्मादीव्यः कृषि मित्कृषस्व वित्तेरमस्व
बहु मन्यमानः । तत्र गावः कितव तत्र जाया
तन्मेविचिष्टे सवितायमर्यः ॥ ३०

हे कितव ! तू जूआ मत खेल, कृषिकर ! कृषि प्राप्त धनको ईश्वर दत्त मान कर आनन्द कर, कृषि के प्रसंग में गौ का पालन और अपनी स्त्री का भरण कर, इस बात को ईश्वर कहता है ॥ ३० ॥

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्वस्वित् । ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोन्येषा मस्तमुपनक्तमेति ॥ ३१

कितव की स्त्री सर्वदा रुष्ट रहती है, माता भी उस को देख कर कुढ़ा करता है, ऋणि से डरता हुआ कितव धन की कामना से रात्रि को औरों के मकानों में जाता है ॥ ३१ ॥

ये पंथानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावा-पृथिवी संचरन्ति । ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहरामि ॥ ३२

द्युलोक और पृथिवी के मध्य में जितने जल मार्ग, आकाश मार्ग हैं वह मुझको मार्ग दें जिस देश देशान्तरों में, दूध घी बेच कर, मैं धन लाऊं ॥ ३२ ॥

येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धन-मिच्छमानः । तस्मिन्म इन्द्रो रुची मा दधातु

प्रजापतिः सविता सोमो अग्निः ॥ ३३

हे देवताओ ! जिस धन से मैं व्यवहार करता हूं अथवा धन से धन (ब्योज) कमाता हूं। ईश्वर मेरी रुचो उस में बढ़ावें ॥ ३३ ॥

नमस्ते जायमानायै जातायै उतते नमः ।

बालेभ्यः शफेभ्यो रुपाय अघ्न्ये ते नमः ।३४

हे अघ्न्ये ! गर्भ में आई हुई तुझ को नमस्कार है और उत्पन्न हुई तुझको नमस्कार है तेरे रोमों को तेरे खुरों को तेरे रूप को नमस्कार है ॥ ३४ ॥

यस्तिष्ठति चरति यश्चवंचति यो निलायं च-

रति यः प्रतंकम् । द्वौ सन्निषद्य मन्मन्त्रयेते

राजा तद्वेद वरुण स्तृतीयः ॥ ३५

जो बैठा है जो चलता है, जो किसी को ठगता है जो छिप कर घूमता है , जो इधर उधर होता है, जिस बात को दो मनुष्य एकान्त में विचारते हैं, वह सब तीसरा राजा वरुण जानता है ॥ ३५ ॥

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे । यो भूतः

सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥३६ ॥

जिस के वश में सब कुछ है, जो सब का ईश्वर है जिस में सब प्रतिष्ठित हैं, उस प्राण को नमस्कार है। प्राण अपान व्यान उदान समान यह सब वायु के भेद हैं ॥ ३६ ॥

कालोऽमूं दिवमजनयत् काल इमाः पृथिवी रुत। कालोऽहं भूतंभव्यं चेषितं ह वितिष्ठते ॥ ३७॥

काल ने इस द्युलोक को उत्पन्न किया, काल इस पृथिवी को उत्पन्न करता है काल में भूत भव्य विद्यमान रहता है ॥ ३७ ॥

काले मनः काले प्राणः कालेनाम समाहितम्। कालेन सर्वनन्दन्ति आगतेन प्रजा इमाः ॥ ३८॥

मन, प्राण, नाम यह तीनों काल में रहते हैं आये हुये काल से सब प्रजा आनन्दित होती है ॥ ॥३८

इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान्-विधृतीह पुण्या। सर्वांलोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमानु देवः ॥ ३९

इस लोक को, परलोक को, और पुण्य लोकों को, पुण्य धारणाओं को, सब लोकों को अपने ब्रह्म को जीत कर, देव काल चेष्टा करता है ॥ ३६ ॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमारी उत वा कुमारी । त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः ॥ ४०

हे परमात्मन ! आप स्त्री हैं आप ही पुरुष हैं आप कुमार हैं और आप कुमारी हैं आप जीर्ण (वृद्ध) हो कर दण्ड से वंचित करते हैं, आप विश्वतो मुख होते हुए भी उत्पन्न होते हैं ॥ ४० ॥

ओं द्यौः शान्ति रन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्ति रापः शान्ति रोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्ति रेव शान्तिः सा मा शांति रेधि ॥

हे भगवन् ! सूर्यादि लोक हम को सुखदायक हों, तथा आकाश, पृथिवी, जल, ओषधि, वनस्पति, संसार के सब

विद्वान्, ब्रह्म जो वेद यह सब हमका सब काल में सुखदायक हो।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

छप गई !   छप गई !!   छप गई !!!

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमदी

भाषा फक्किका प्रकाश प्रथम खण्ड ।

—:o:—

इस पुस्तक में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकायें मूलार्थ सहित सरल हिन्दी भाषा में विस्तार पूर्वक भाष्यादि ग्रन्थों से पण्डित प्रभाकर शास्त्री ने कठिन परिश्रम से संग्रह की हैं। यह इतनी सरलता पूर्वक लिखी गई है कि विद्यार्थी गुरु की सहायता के बिना लघु कौमुदी पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकता है अधिक क्या कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो हम ने लिखने में छोड़ा हो। अतः विद्यार्थी गणों को इस से लाभ उठाना चाहिये। यदि विद्यार्थी गण इस में रुचि दिखायेंगे तो शीघ्र ही हम इस के आगे के संस्करण निकालने का आयोजन करेंगे। १५० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य ॥) पचास से अधिक लेने पर २०) सैंकड़ा कमीशन दिया जायगा।

२ शब्द सदाचार संग्रह।

इस में कबीर, सूरदास, गोरखनाथ, धीरजानन्द आदि अनेक महात्माओं की वाणियों का संग्रह है। इस के अतिरिक्त

मनुष्य जीवनोपयोगी उत्तम उपदेशों का भी संग्रह है। मूल्य केवल =)।

३ ज्ञान धर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र धर्म का सार संग्रहीत है। प्रथम वेद के उत्तम श्लोक अर्थ सहित हैं फिर वेदान्त, ज्ञान, तथा धर्म के लेख और उत्तम कविताओं का संग्रह है मूल्य =)॥। इस के अतिरिक्त भक्ति ज्ञानयोग संग्रह, शब्द संग्रह डाक व्यय भेजने पर भेजी जा सकती हैं।

नोट:—

जिन सज्जनों को इन पुस्तकों की एक दो प्रतियां मंगवानी हों वह मूल्य और डाक व्यय की टिकट भेज कर मंगा सकते हैं। अन्यथा वी० पी० द्वारा खर्चा अधिक लगेगा।

सूचना।

आश्रम में प्रेस भी जारी कर दिया गया है। यहां पर बहुत सस्ती, सुन्दर तथा समय पर पुस्तकें छापी जाती हैं।

मैनेजर

भक्ति प्रेस भगवद्भक्ति आश्रम,

रामपुरा (रेवाड़ी)

मुद्रकः-भूमानन्द ब्रह्मचारी भक्ति प्रेस भगवद्भक्ति आश्रम
रामपुरा रेवाड़ो।